# Satya ka Avahan

# सत्य का आवाहन

*Invoking the Divine*

Year 5 Issue 3 May–June 2016
Membership Postage: Rs. 100

Sannyasa Peeth, Munger, Bihar, India

Hari Om

Satya ka Avahan is a bilingual and bi-monthly magazine compiled, composed and published by the sannyasin disciples of Sri Swami Satyananda Saraswati for the benefit of all people who seek health, happiness and enlightenment. It contains the teachings of Sri Swami Sivananda, Sri Swami Satyananda and Swami Niranjanananda, along with the programs of Sannyasa Peeth.

**Editor**: Swami Yogamaya Saraswati

**Assistant Editor**: Swami Sivadhyanam Saraswati

**Published** by Sannyasa Peeth, c/o Ganga Darshan, Fort, Munger – 811201, Bihar.

**Printed** at Thomson Press India (Ltd), Haryana

© Sannyasa Peeth 2016

**Membership** is held on a yearly basis. Late subscriptions include issues from January to December. Please send your requests for application and all correspondence to:

**Sannyasa Peeth**
Paduka Darshan
PO Ganga Darshan
Fort, Munger, 811201
Bihar, India

✉ A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request

---

*Front cover*: Sri Lakshmi-Narayana Mahayajna 2015

*Plates*: 1–2: Chaturmas 2015;
3: Guru Bhakti Yoga;
4–7: Pashupata Astra Yajna & Panchagni Poornahuti 2016;
8: Dasha Mahavidya Peeth

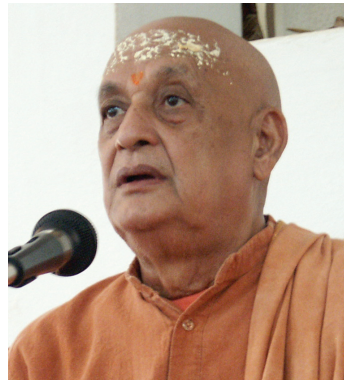

## SATYAM SPEAKS – सत्यम् वाणी

One should be blissful and happy always. This is real sannyasa.

*—Swami Satyananda*

तुम्हें हमेशा खुश और प्रसन्न रहना चाहिए। यही सच्चा संन्यास है।

*—स्वामी सत्यानन्द*

**Published** and printed by Swami Shankarananda Saraswati on behalf of Sannyasa Peeth, Paduka Darshan, PO Ganga Darshan, Fort, Munger – 811201, Bihar.
**Printed** at Thomson Press India (Ltd), 18/35 Milestone, Delhi Mathura Rd., Faridabad, Haryana.
**Owned** by Sannyasa Peeth **Editor**: Swami Yogamaya Saraswati

Satya ka Avahan
सत्य का आवाहन
Invoking the Divine
Year 5 Issue 3 • May–June 2016

न तु अहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनां आर्त्तिनाशनम्॥

"I do not desire a kingdom or heaven or even liberation. My only desire is to alleviate the misery and affliction of others."

—Rantideva

## Contents

2 See Only the Good
3 साधक की परीक्षा
5 Householder and Sannyasa Life
8 साधक के प्रति
11 Celebrating Chaturmas
16 चातुर्मास अनुष्ठान का प्रयोजन
19 Kabir Sangeet: Beyond Duality
23 नारायण भोज
25 Krishna Aradhana: Celebrating Unconditional Love
27 रंग दे चुनरिया
28 Ramarchan: Invoking Perfection
30 अयोध्या में आसीन आराध्य
33 Poornahuti of Chaturmas
35 The Gift of Samskara
37 Faith
40 गुरु का सहारा और गुरु का प्रेम
45 Value of Satsang
46 Meditations for Walking the Path
48 चातुर्मास की छटा निराली

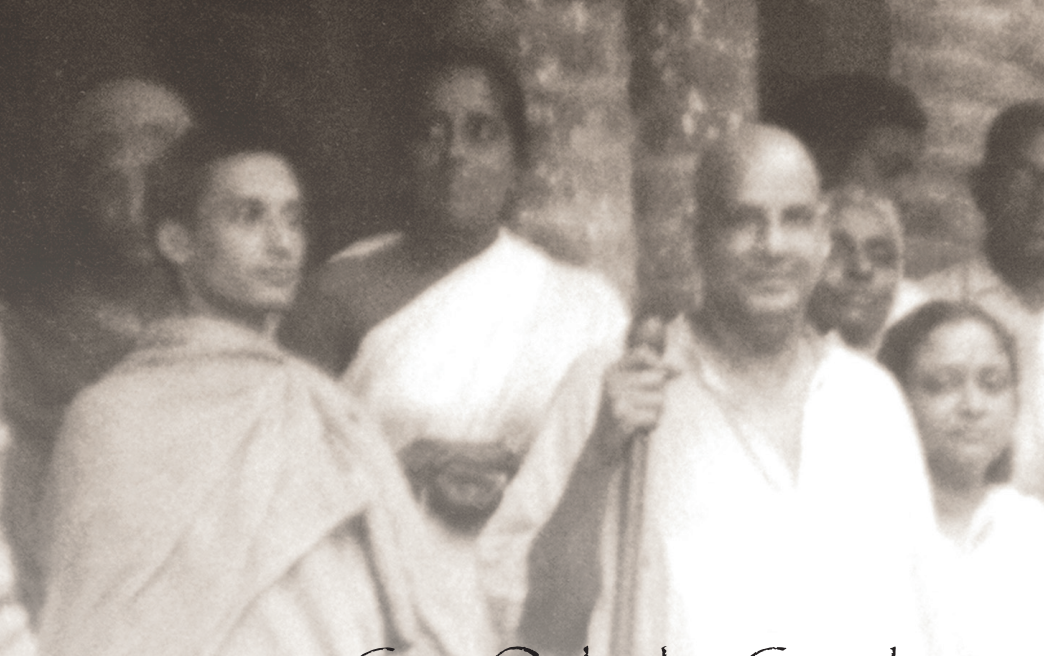

# See Only the Good

*Swami Sivananda Saraswati*

Try to see good in everybody. Do not develop the *dosha-drishti*, the fault-finding nature. Your evil mind, your lower nature, will try to ignore the good qualities that are in a man and try to see only his defects. You will have to cultivate the eye of discrimination. Human nature is such that man tries to see only defects in others; you will even superimpose evil upon persons in whom such evil qualities do not exist. Through satsang and study, you will have to eradicate this nature. You will have to cultivate the habit of seeing only good in others. Then only will you be able to unite with all. You will be able to recognize the goodness in all. You will not have *ghrina*, hatred, etc. You will have to cultivate this habit through satsang. ■

# साधक की परीक्षा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही योग्य व्यक्ति को नौकरी मिलती है। इसी तरह भगवान भी साधक की परीक्षा लिया करते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि वह मोक्ष पाने का अधिकारी बना है या नहीं। इन परीक्षाओं का स्वरूप बड़ा कठिन और कठोर हुआ करता है। आध्यात्मिक साधकों के लिए ब्रह्मचर्य-परीक्षा, देहाध्यास-परीक्षा, समदृष्टि-परीक्षा और मनोपशम-परीक्षा नामक चार परीक्षाएँ निश्चित रहती हैं, जिनमें उत्तीर्ण होकर ही उनको मोक्ष का अधिकारी माना जाता है।

भगवान बुद्ध के जीवन-चरित्र से ज्ञात होता है कि उनकी भी परीक्षा ली गयी थी। कौन-कौन से ऐसे माया-भाव नहीं थे, जिन्होंने उन्हें आक्रान्त नहीं किया? उनको मार का सामना करना पड़ा था। युद्ध-भूमि में लोहा लिया, परीक्षा में खरे उतरे, तब बोधि-वृक्ष के नीचे उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई।

जैमिनि को उनके गुरु भगवान व्यास ने ब्रह्मचर्य-परीक्षा में कसा था। विश्वामित्र मुनि की परीक्षा ली गयी थी। श्री हरि ने देवर्षि नारद को भी कसौटी पर कसा था। खरा उतरने के लिए सोने को आग में तपना पड़ता है। ब्रह्मचर्य-परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने पर ही साधक को मोक्ष का अधिकारी समझा जा सकता है।

दूसरी परीक्षा है देहाध्यास की। देहाध्यास होने पर साधक इस देह से प्रेम करने लग जाता है। शरीर नाशवान् है, इससे आसक्ति क्यों? योगी मत्स्येन्द्रनाथ ने एक बार अपने शिष्यों की ऐसी परीक्षा ली थी। जमीन पर एक त्रिशूल गाड़कर उन्होंने अपने शिष्यों को पेड़ पर चढ़कर उस पर कूदने को कहा। शिष्यों का देह से प्रेम था, वे एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। लेकिन एक शिष्य ऐसा निकला जिसने गुरु की आज्ञा के सामने शरीर को कुछ भी न समझा और आज्ञानुसार वृक्ष पर चढ़कर त्रिशूल पर कूद पड़ा। योगी मत्स्येन्द्रनाथ ने उस शिष्य की अनासक्ति से प्रसन्न होकर उसे मृत्यु से बचा लिया।

गुरु गोविन्द सिंह ने भी अपने शिष्यों की परीक्षा ली थी। उन्होंने उनसे सिर देने के लिए कहा। बहुतों ने डर कर अस्वीकार कर दिया। पाँच शिष्य ही सहर्ष अपना सिर देने के लिए आगे आए। देहाध्यास से छुटकारा मिल गया तो साधक इस परीक्षा में सफल उतरता है।

तीसरी परीक्षा है समदृष्टि की। क्या साधक कुत्ते, बिल्ली, हाथी और सूअर– इन सबमें भगवान के दर्शन कर रहा है? भगवान इस प्रकार साधक की परीक्षा लेते हैं। एकनाथ महाराज की परीक्षा हुई थी। नामदेव को भी कसौटी पर खरा उतरना पड़ा। शंकराचार्य की परीक्षा के लिए भगवान को चाण्डाल का रूप धारण

करना पड़ा। चाण्डाल का रूप धारण करके ही उन्होंने शंकराचार्य को ब्राह्मणत्व के अभिमान से मुक्त किया था।

चौथी कसौटी मनोपशम (मानसिक शान्ति या समता) की है। भगवान साधक के जीवन में अनेक प्रकार के कष्टों को उत्पन्न करते हैं। किसी की स्त्री का प्राणान्त हो जाएगा या बच्चे की अकाल मृत्यु हो जाएगी। किसी की सम्पत्ति नष्ट हो जाएगी, किसी को व्याधिग्रस्त होना पड़ेगा। इस प्रकार भगवान साधक को नि:सहाय-सा बनाकर उसके मन की समता की जाँच करते हैं, क्योंकि ऐसे ही अवसरों पर मनुष्य अपने मन की शान्ति खो बैठता है। यदि ऐसे दारुण दु:ख न आएँ तो प्रत्येक व्यक्ति मन को शान्त रख सकता है। अत: भगवान इसी कसौटी पर साधक को कसते हैं।

तुम्हारी लगन और सहिष्णुता की भी इसी प्रकार जाँच की जाएगी। तिब्बत के योगी मिलारेप्पा को उसके गुरु मारपा ने कितनी कठिनाइयों में कसा था, यह सर्वविदित है। बार-बार ऊँचे पहाड़ पर मकान बनाने का आदेश दिया जाता था और जब मकान तैयार हो जाता था तो मिलारेप्पा को उसे तोड़ कर, उसके गारे-पत्थरों को नीचे लाने के लिए कहा जाता था। कई बार ऐसा हुआ। इतनी कठोर यन्त्रणा के बावजूद भी योगी मिलारेप्पा ने हिम्मत न हारी, वे गुरु की आज्ञा के अनुसार कार्य करते गये। फल यह हुआ कि योगी मिलारेप्पा तिब्बत के महान् योगी बन गये। गुरु ने भी उन्हें मंत्र-दीक्षा तभी दी जब वे अपनी परीक्षाओं में खरे उतरे।

इन चार अग्नि-परीक्षाओं में सफल होने की शक्ति और योग्यता हो तो भगवद्-साक्षात्कार होता है। ऐसे साधक के योग-क्षेम के लिए भगवान ने 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' की प्रतिज्ञा की है। सूरदास को जिस प्रकार वे रास्ते पर ले जाते थे, उसी प्रकार अपने भक्त को भी ले जाएँगे। सोना खरा उतरने पर राजा-महाराजाओं के गले का आभूषण बनता है और साधक अपनी परीक्षाओं में सफल उतरने पर भगवान का प्यारा। ■

# Householder and Sannyasa Life

*Swami Satyananda Saraswati*

**Is there no other path to free us than the life of sannyasa?**

A sannyasin's life and a householder's life are defined as 'akarma in karma'. Grihastha ashrama is called akarma in karma. You realize that you are not acting, even though you are. And a sannyasin's life is not acting while feeling that you are acting.

In the fourth chapter of the *Bhagavad Gita* (4:18) it is said: *Karmanyakarma yah pashyed akarmani cha karma yah* – "See karma in akarma, akarma in karma." It can also be said that there are two paths: *pravritti,* involvement, and *nivritti,* freedom from involvement. According to Sri Krishna, these two paths are not contradictory to each other. He says (18:45): *Swe swe karmanyabhiratah samsiddhim labhate narah* – "If you are engaged in your own karma, thereby you can attain siddhi."

The life of a householder is by no means inferior to the life of a sannyasin. Unfortunately, householders throughout the world have lost track of their aim. Many people do not know how they should live life, not only for self-realization, but even for experiencing normal happiness. They do not know how to live a peaceful life. That means there is something lacking in them and that is why they are unhappy. Otherwise the life of a householder is a perfect pattern in itself through which you can attain nirvana, the summum bonum.

A householder's life is known as *grishastha ashrama* in the Indian tradition. Before you become a grishastha, you are called a brahmacharin, one who lives the brahmacharya ashrama. There are four ashramas: brahmacharya ashrama, grihastha ashrama, vanaprastha ashrama and sannyasa ashrama. You can take any one of the four to realize the ultimate. There are some people who cannot become householders and they should not. And there are people who should not take sannyasa.

Your house is also an ashram if you live that way. Right now it is not an ashram because you do not work there. You know what 'ashram' means? A place where you labour hard, where you do *shram*. There is a certain kind of labour that you do in order to acquire external wealth. There is another kind of labour that you do in order to acquire inner wealth. That is spiritual labour: you are meditating, or you are doing karma yoga – that is also shram, that is also hard work. When you are working with your children and family, that is also shram. You have to put forth hard work wherever you are, for both worldly wealth and spiritual wealth.

Therefore, a householder's life is as good as the life of a sannyasin. Nothing can stand on the path of a man who knows how to live life and how to accept it. The more you work hard, the better you feel, as you are producing an external result for the community. You are producing a result for posterity, for history. At the same time, you are not diverting your energies to destructive purposes; you are neither destroying the society nor yourself.

Sannyasa is not just clothes; it is a philosophy, an idea. If the idea of sannyasa is translated into the life of a householder, householder life and the life of a sannyasin will come closer. Today, between the life of a householder and the life of a sannyasin there is such a big gap. You say, "I am a householder and he is a sannyasin. He is spiritual, can I be spiritual?" This gap has to be reduced.

It is true that life has to be based on the four purusharthas: artha, kama, dharma, and moksha. However, for a householder, *artha* and *kama*, purpose and fulfilment of desires, come first. For a sannyasin dharma and moksha come first, not artha and kama. That's the only difference. A sannyasin exists solely for dharma and moksha, while a householder should not exist solely for artha and kama. These may be prominent, but he must know that the ultimate purpose of artha and kama is dharma and moksha.

*– 12 October, 1982, Ganga Darshan, Munger*

# साधक के प्रति

*स्वामी सत्यानन्द सरस्वती*

मुझे शिष्य नहीं, बलि के बकरे चाहिए। मैं एक ऐसे मिशन को लेकर आया हूँ, जिसमें मुझे वज्र-कठोर शिष्य की जरूरत है, जिसे न धन पचा सके, न औरत, न नाम, न मोह, किन्तु जो इन सबका अधिकारी हो। जन्म, मृत्यु, लोभ, पर-लोक—सबसे निर्भय, लोक-लाज से परे, प्रभावों के ऊपर जो अविचलित होकर रहता है, वह मेरा प्रधान शिष्य है। मैं बहाना नहीं सुनना चाहता। कुछ भी हो जाए, किन्तु मेरी बात रहेगी।

सदैव ईश्वर को याद रखो। दिनभर। जैसे लोभी को धन का लोभ, खूनी को पुलिस का डर, वैसे-ही तुम्हें भी ईश्वर की सजगता। प्रत्येक आनन्द उसका वरदान। हर श्वास उसका चमत्कार। हर रोज उसकी महिमा। एक क्षण ऐसा भी होता है जब आत्मा जाग उठती है, तब जड़ और चेतन की एकता का अनुभव होता है।

संन्यास-पद ही वह पद है, जिसकी महिमा सनातन है। यह मार्ग त्याग का है, संग्रह और शोषण का नहीं। राजा-जमींदार मिट गए। मिनिस्टर, क्लेक्टर भी मिट जाएँगे। समाजवाद-साम्यवाद भी। पर साधु नहीं। और यदि साधु योगी हुआ तो फिर कहना ही क्या?

निश्चय है कि जो साधु-पद है वह प्रोफेसर, प्रिंसिपल, म्युनिसिपल-चेयरमैन, वकील या जज के पद से ऊँचा है। नि:संदेह योगी का पद देवताओं से भी ऊँचा है। साधु हो, योगी हो, वैरागी हो, लोक-संग्रही हो, तो कोई कितना ही चाहे उसको मिटा नहीं सकेगा, क्योंकि सारा संसार अपने लिये जीता है, अपने लिये धर्म मानता है, पर साधु संसार के लिए। संसार अपने सुख को देखता है और साधु संसार के सुख को।

साधु-पद में तृष्णाओं की विशालता को फेंककर खाली हो जाना पड़ता है। साधु संसार में हर-एक को आदरणीय और मित्रवत् समझता है। साधु को बड़प्पन का चोला फेंक देना पड़ता है; उसे तृण से भी कोमल, वृक्ष से अधिक धैर्यशाली और धरती से अधिक सहनशील बनना पड़ता है। वह प्रतिकार नहीं कर सकता। वह अन्याय और अपयश चुपचाप सहन करता है। वह न्याय की रक्षा का नारा बुलन्द नहीं करता। शायद इसीलिए यह पद कठिन समझा गया है।

इस पद की महिमाको लोग नहीं समझते। यह भगवा वस्त्र तेजस्विता का प्रतीक है। भला जिसने माया-मोह को लात मार दी हो, वह ध्रुवतारे की तरह क्यों नहीं चमकेगा। याद रखो कि साधु पद ही अमर-पद है, सनातन-पद है। आनन्द का पद है। धन्य है वह, जिसने इस पद को पाया। पर विषयी समुदाय इसकी सदैव

निन्दा ही करेगा। तुम रोक नहीं सकोगे। कहो मुख से, मन से और अनायास—'मैं आनन्दमय योगी हूँ, मांस और पत्थर का नौकर नहीं, इच्छाओं का दास नहीं, ऑफिसरों की जी-हजूरी में नहीं। मैं शहनशाही, मिनिस्टरी, और नेमत-दौलत पर थूकता हूँ। मैं आत्म-सम्राट् हूँ।'

लघुता की भावना हटाओ और संन्यास के आत्म-गौरव को इच्छा रहित बनकर संभालो। न कर्म से, न प्रज्ञा से, न धन के लोभ से, बल्कि त्याग से अमर-पद की प्राप्ति होती है। दूसरों की कमजोरी पर जीवन बसर करने वाले कब से बड़े हुए? दूसरों की अक्ल, सम्पत्ति व निर्बलता पर जीवन बसर करने वाले कब से बड़े हुए? यही जानकर इस पथ पर चलो।

तुमने साधु-पद गहा और शक्ति-पद पाया। अहं त्यागा, सर्वस्व पाया। प्रेय को त्यागा और श्रेय पाया। राग को त्यागा और वैराग्य पाया। आदर की लालसा त्यागी तो आदर तुम्हें पुकार रहा है। जीवन का मोह भी त्याग दोगे, तो जीवन मिलेगा। इच्छाओं के समूल त्याग से ही इच्छाओं की अशेष निष्पत्ति होती है। त्याग ही श्रेय और पूर्णता का मार्ग है। पूर्णता अपूर्ण तृप्ति नहीं, बल्कि पूर्ण सन्तोष है अखण्ड जीवन में। जो अखण्ड है, उसी में परम सुख है। अल्प में सुख कहाँ है? इच्छाएँ अल्प, इनकी पूर्ति अल्प, उनके प्रभाव भी अल्प। हे सौम्य! इच्छाओं में श्रेय कहाँ?

हे तात्, तुम तेजस्विता और ज्ञान से भरपूर हो। स्वार्थी सोचते हैं कि कैसे तुम्हारा शोषण हो और कैसे तुम्हारी प्रतिभा का फायदा उठाया जाए। पर त्यागी

को कौन धोखा दे सकता है? और इसीलिए स्वार्थियों को त्यागी से डर लगता है कि वह सतर्क हो गया है और स्वार्थ-निहित प्रयोजनों की असलियत जान चुका है। आदर्शों की आड़ में संसार तुम्हारा धन माँगता है, शक्ति, शरीर, सेवा और अधिकार। अन्ततः ठोकर देकर हटा देता है। त्यागी इस रहस्य को जानता है।

तुम्हें ऊर्ध्वरेता बनने की साधना करनी होगी। संस्कारों को तपा-तपा कर जलाना होगा। कठोरता साधनी होगी। आत्म-शक्ति को जगाना होगा। सूर्य की तरह चमकेगी तुम्हारी आत्मा। जो बिन्दुजयी मृत्यु को लांघता है, उसके कर्म नष्ट हो जाते हैं, उसके वचन सत्य, उसके विचार सत्य, उसकी दृष्टि सत्य। बिना ब्रह्मचर्य के काया में सुगन्ध नहीं आती। बिना ब्रह्मचर्य के देवता नहीं आते। उत्तरायण भर बिन्दु धारण करने वाला प्रेतों पर राज करेगा। वर्ष भर तक साधने वाला देवों पर। बारह वर्षों तक ब्रह्मचर्य-वास करने वाला ईश्वर तुल्य पवित्र हो जाता है।

क्या मैं तुम्हें शक्तिशाली विचार दे रहा हूँ? नीच लोग इन वाक्यों को पढ़कर घबरायेंगे, पर सज्जनों को उत्साह और प्रेरणा मिलेगी। तुम्हें भी। आत्म-शक्ति को बटोरो और आदेश की प्रतीक्षा करो। मैं तुम्हें दहकती अग्नि की तरह देखना चाहता हूँ। और तुम्हारी मुट्ठियाँ बँधेंगी, चेहरा तमतमाएगा, माथा गरमाएगा, गहरी साँसें निकलेंगी, दृष्टि स्थिर हो जाएगी, अंग भंगिमा अचल, दाँत पिस जाएँगे और तुम भीष्मव्रत को स्वीकार करोगे। बारम्बार कई दिन ऐसा होता जाएगा और एक दिन तुमको यह दुर्लभ-पद प्राप्त होगा ही।

अन्न को प्रसाद जानकर लो। निद्रा को समाधि। जीवन को साधना। कर्मों को ब्रह्मकर्म। संसार को ऊपर से विष-रूप और मूल में ब्रह्म-रूप। चिन्ता और दुःख को आते-जाते मेघों के समान। निन्दा को पूर्णत्व की प्रक्रिया, प्रशंसा को धोखा, लाभ को असार और हानि को अवश्यंभावी। तभी तुम इस आग पर, जिसमें ब्रह्म का आह्लाद रहता है, रह सकोगे।

हे परम पवित्र, जीवन की नींद से उठो। सबेरा होने वाला है और रात जाने वाली। जाड़ा जानेवाला है और बसन्त आनेवाला है। तुम अपने भाग्य-विधाता, तुम अपने मन के स्वामी! तुम उठो—शरीर, मन, संस्कार और बुद्धि से ऊपर; जहाँ शंकराचार्य, रामकृष्ण आदि जा चुके हैं । अन्तर्निहित, अनादि वासना को आप्तकाम बनकर हटाओ। निर्भय बनकर धारणाओं को, अन्तर्मुख होकर दुःख-शोक को, धक्का देकर पशु और दैत्यों को। काल-पुरुष के शव पर खड़े होकर डमरू बजाओ, खप्पर तानो और तृष्णा को पीते चलो। ■

*साधु को चाहिए कि वह सदैव याद रखे कि वह साधु है। उसे अपने नियमों की रक्षा करनी चाहिए।*

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

CHATURMAS SATSANGS

# Celebrating Chaturmas

*Swami Niranjanananda Saraswati*

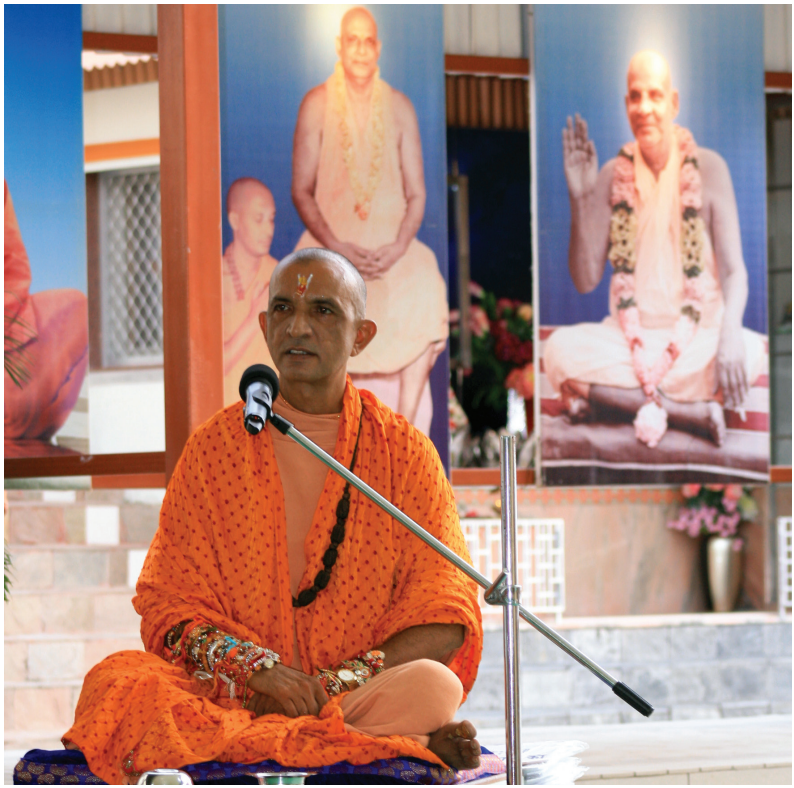

In 2015, as part of the activities of Sannyasa Peeth, we started another program: Chaturmas. The meaning of the word *chaturmas* is 'four months', indicating the four months of rain: Savan, Bhadon, Gwar and Kartik in the Indian calendar. Of these, the heaviest rain occurs in two months, Savan and Bhadon, the period from Guru Poornima in July to Bhadrapad Poornima in September.

In the olden times it was a tradition of sannyasins who used to wander around the country, to stay put in one place during

the rains. Wherever they happened to be, whether town or village, they would remain there, as travel was difficult at this time. Therefore, they used this two-month period for their own sadhana and also to bring spiritual and cultural understanding into the society where they stayed, to introduce the systems and traditions that help one connect with a higher experience in life. They would conduct different programs: satsang, havan, yajna, kirtan, bhajan, dance, music, all from the spiritual perspective. Nothing was for social entertainment. Even if it was music or dance, it was spiritual. Even today there are many traditions in India that follow this routine.

As a sannyasin, before launching the Bihar School of Yoga, Sri Swami Satyananda used to observe Chaturmas in Paduka Darshan, in the Golkothi there. He had many experiences at that time, visions in meditation, extraordinary clarity of thought, and so on. He has spoken about this in many satsangs. When BSY was inaugurated, he stopped the observance of Chaturmas. He then focused only on yoga and devoted his life to the propagation of yoga, setting aside his sannyasa sadhanas for the time being. For twenty years he propagated yoga and established yoga as a household word. Then he retired, went into seclusion, and recommenced his sannyasa sadhanas. Then, before taking mahasamadhi in 2009, he instructed me to establish Sannyasa Peeth and to revive the ancient culture of the sannyasins and rishis.

The sannyasa systems are gradually being implemented and Sannyasa Peeth is taking shape. In 2014 we initiated the first program that was conducted as a course. It was called Adhyatma Samskara Sadhana Satra. In 2015 we refined it further and the nine-day course was wholly focused on cultivating spiritual samskaras, the appropriate and positive attitudes that can help one understand the better aspects of life in a different manner. It was a period to work on oneself. One was not just learning the principles, but actually working with them and applying them. The course was, I would say, tremendously successful, as everybody who participated

in it took back a lot with them. Gradually the scope may be expanded. The serious and sincere yoga aspirants must participate in it once to come to know the other dimension of yoga in relation to one's own spiritual awareness and experience.

The second program was Chaturmas. We held it for two months, from Guru Poornima to Bhadrapad Poornima. It was an experiment and not a publicized event, nevertheless it was a good program. It commenced with Guru Poornima, an uplifting time, and then the other programs followed. People were free to come and go, they could stay for one hour, one day, one week, one month, or two months. At a personal level, it involved an intensive routine. My sadhanas would begin after everybody had gone to sleep: from 8 in the evening until 1 at night. Then rise at 4 am. So for two months there was only two-three hours of sleep every night, and during the day a full program.

In the evenings were the open sessions, in which everyone could participate. These sessions were mesmerizing, as performers and artistes were invited from various different traditions and cultures, and they were all brilliant. Immediately after Guru Poornima, we had two *kathas*, the telling of stories from scriptures, for five days each. During these talks, one tried to understand and know these ideas not from a religious and mythological perspective but from the reality that confronts one in life.

Then we had songs and music of different traditions. The Bauls came, the Bengali tradition of wandering minstrels who sing devotional bhakti songs playing their one-stringed instrument. In their songs the entire sadhana process of accessing the transcendental dimension is described: what the devotee undergoes when the spirit is about to meet with the Beloved, the heartfelt yearning for union, what happens when the mind drags one down, what one should do to avoid the dragging of the mind and remain connected with the Beloved, and so on. In yoga we say, "Sit down, close your eyes, focus on the breath, focus on the mantra, focus on this or that", the Bauls

say the same thing but in song form with philosophy included. That was a tradition started by Chaitanya Mahaprabhu. It was beautiful to see the ancient time of Chaitanya coming alive today: glimpsing how the bhakti movement took place and how it was propagated by these wandering minstrels.

We had singers who rendered in music the *Nirgunapad* of Kabir, verses describing different states of consciousness and containing all the spiritual secrets and the experiences that are possible to have on the path. In fact, if you know how to decipher Kabir's words, the *Nirgunapad* is like a spiritual encyclopaedia. The group that presented it had come from Madhya Pradesh and their music was totally compelling.

Then we had Krishna Aradhana, four days of merrymaking during the period of Jhoolan. It was nice to see the whole town of Munger dancing the Garba and the Dandia. It was as if Krishna had come alive. Even old people, such as Swami Shankaranandaji, could not contain themselves. He is eighty-six, he got up from his seat and with two sticks in hand he was dancing with all the young people.

This was followed by Krishna Janmashtami, the birthday of Krishna, and we had a special program for the occasion. Krishna was born at midnight, and a group from Orissa did akhand kirtan all night long. It was a whole night of prayer. At midnight we had the birthday party, and celebrated Krishna's arrival with kheer. This happened on 5th September, and on the 5th and 6th we also celebrated Guru Bhakti Yoga, commemorating the mahasamadhi of Sri Swamiji, so the whole celebration was combined in one thirty-six-hour program. The kirtanists from Orissa specialize in chanting akhand kirtan, they can sing for twenty-four hours without a break. That is also a tradition, akhand kirtan of the Mahamantra. It can happen from a twelve-hour period to a twenty-four-hour period, to any number of days; day and night it goes on, the singing of Mahamantra.

On the 7th, the rehearsal for Lakshmi-Narayana Mahayajna, which was to commence the next day, was on. However, at

midday, when nobody was around, the pandits came and said, "Swamiji, you have to start the yajna today, not on the 8th." I said, "All right." So we started, the pandits and myself, with nobody in the empty pandal. When people came at 2 in the afternoon for rehearsal, they found that the yajna was already on, the mantras were being chanted, the ahuti was being performed. So the Lakshmi-Narayana Yajna which was to start on the 8th actually started on the 7th and then concluded on the 12th. On the 12th we also dedicated the Chhaya Samadhi of Sri Swamiji.

After that, we had a group from Chhattisgarh, who narrated the lives of the Pandavas through folk music. They call themselves Pandavanis, descendants of Pandavas from the Parikhshit lineage, and they only tell the story of the Pandavas, not of Mahabharata, not of Duryodhana, not of Bhishma. There are different styles of doing the Pandavani katha, one in which the narrator is standing and one in which the narrator is kneeling all through. The group that came here followed the second style, and it was a different method of storytelling but a captivating and insightful one.

Next we had Ramarchan, a very old and famous invocation of Sri Rama prevalent in north India. It is a powerful aradhana, and this was also conducted for the first time.

The last program was satsangs with Swami Muktananda of Alwar, who spoke on the Shiva consciousness by explaining the *Shiva Shadakshara Stotram*. Along with his satsangs, students from a university in Orissa did performances. Finally, the Chaturmas program ended on 28th September with Satyanarayan Katha, through which Lord Narayana is invoked to bestow peace, prosperity, happiness, success and auspiciousness in life. In this way, we had two full months of different programs which were novel and inspiring for all. The purpose was to expose people to these traditions, so they become aware of the various trends of the spiritual path.

*– October 2015, Ganga Darshan*

**चातुर्मास सत्संग**

# चातुर्मास अनुष्ठान का प्रयोजन

*स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती*

इस साल मुंगेर में हमने चातुर्मास का यह पहला कार्यक्रम रखा है। बहुत लोगों के प्रश्न आए कि पचास साल हुए, मुंगेर आश्रम में कभी ईश्वर के साकार रूप को नहीं देखा गया, हमेशा निराकार रूप पर ही जोर दिया गया। पचास साल तक योग का प्रचार-प्रसार किया गया, कभी धर्म का प्रचार तो नहीं किया गया। तो क्या अब स्वामी निरंजन योग गुरु का पद छोड़कर धर्म गुरु का पद अपना रहे हैं?

इस प्रश्न का हम स्पष्ट उत्तर देते हैं। नहीं, योगाश्रम की परम्परा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। वह योग का केन्द्र है और जब हम वहाँ जाते हैं तो योग पर ही बात करते हैं, किसी अन्य विषय पर नहीं।

साथ ही हमारे गुरुजी ने हमें आदेश दिया था संन्यास पीठ की स्थापना का। संन्यास पीठ भारत के धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रवर्तनों से जुड़ी संस्था है और इसे इन प्रवर्तनों से अलग करने का कोई औचित्य भी नहीं है। इसलिए जब हम संन्यास पीठ में रहते हैं तो संन्यास पद्धति के अनुसार संन्यासियों के लिए जो साधना, उपासना, आराधना, तपस्या आदि विहित हैं, वही करते हैं। चातुर्मास का कार्यक्रम भी इसी पद्धति के अंतर्गत सम्पन्न हो रहा है।

जहाँ तक धर्म की बात है, मैं तो आज तक आप लोगों की धर्म की परिभाषा नहीं समझ पाया। आज आप कहते हो कि आप हिंदू हो और एक विश्वास, मान्यता, सम्प्रदाय, परम्परा और मत को स्वीकार करते हो, लेकिन हमारे पूर्वज इस प्रकार के तो नहीं थे। ऋषि वशिष्ठ या विश्वामित्र जैसे हमारे पूर्वजों पर हिंदू का लेबल लगा था क्या? वे न तो शैव थे, न वैष्णव, शाक्त, सिख, ईसाई, मुसलमान, बौद्ध या जैन। ये सब सम्प्रदाय तो पिछले डेढ़-दो हजार वर्षों के भीतर आए हैं। इसके पूर्व हमारी संस्कृति हिंदू नहीं थी, बल्कि उसे सनातन संस्कृति कहते थे। अगर कोई धर्म है, तो वह सनातन धर्म है जो मनुष्य के परमात्मा के साथ सम्बंध को स्पष्ट करता है।

अपने जीवन में हम परमात्मा की अनुभूति किसी भी रूप में कर सकते हैं। यही भक्ति की विशेषता भी है। भक्ति की एक शब्द में परिभाषा दें तो वह है स्मरण, आदि से अंत तक केवल स्मरण। हमारी परम्परा में कहा गया है कि यह स्मरण श्रद्धा और प्रेम से भी संभव है और वैर भाव से भी, लेकिन मुख्य बात है कि स्मरण होना चाहिए। रावण में राम के प्रति प्रेम था क्या? राम लंका आ गए हैं, युद्ध शुरू हो रहा है, सोते-जागते, खाते-पीते हमेशा रावण के मन में राम का ही स्मरण रहा। कंस तो कृष्ण जन्म से पहले ही कृष्ण की कल्पना करने लगा था। दिन-रात बैठकर 'कृष्ण, कृष्ण' सोचता रहता था। यह स्मरण ही तो भक्ति है। भक्ति में वैर और वात्सल्य जैसे बहुत-से भावों को मान्यता प्रदान की गई है ताकि इन भावों के द्वारा ईश्वर के स्मरण को अपने मन में हमेशा धारण किया जा सके।

यह बात आपको यह समझाने के लिए बतला रहे हैं कि हमारी सनातन परम्परा मनुष्य और परमात्मा के संबंध पर बल देती है। इसी के साथ-साथ मनुष्य जीवन की अच्छाई को, प्रतिभा को, सकारात्मक रचनात्मकता को प्रकट करने के लिए प्रयत्न करती है और इसे कहते हैं अध्यात्म। हमारी श्रद्धा के जो केन्द्र होते हैं, वे हमारे इष्ट होते हैं, हमारे देवता होते हैं, हमारे गुरु होते हैं। यही सनातन परम्परा है।

बाद में अलग-अलग मान्यताओं के कारण संघों और सम्प्रदायों का निर्माण होने लगा। इस पर मुझे एक छोटी-सी कहानी याद आती है। जब पृथ्वी की सृष्टि हुई तो ईश्वर ने एक वृक्ष बनाया और मनुष्य जाति को आदेश दिया, 'देखो, धरती पर एक यही फलदार वृक्ष है। इसका तुम प्रतिदिन एक ही फल खाना। जब तक तुम एक ही फल खाओगे, तब तक तुम्हारे लिए कभी फलों की कमी नहीं होगी।' मनुष्य जाति ने उस निर्देश को कागज़ पर लिख लिया कि इस पेड़ का केवल एक ही फल हमें रोज़ खाना है। दो या अधिक फल खाने से ईश्वर के कानून की अवहेलना है और मानवता को खतरा है।

सदियों तक ऐसा ही चलता रहा। फिर समय बदला, वैज्ञानिक आए। जिस क्षेत्र में ईश्वर ने केवल एक ही पेड़ लगाया था, वहाँ पर अब खेती हो गई, अनेक पेड़-पौधे लग गए, खाने को बहुत हो गया। तब लोग उस पेड़ के पास कम आने लगे। पेड़ पर फलों की संख्या बढ़ती गई, लेकिन किसी ने यह नहीं कहा कि देखो, अब हम दो फल भी खा सकते हैं। अभी तक नियम बना रहा कि एक ही खाना है, पर अब आँखों से दिख रहा है कि फल भूमि पर गिरकर सड़ने लगे हैं!

मनुष्य जीवन के साथ भी ऐसा ही हो रहा है। हम लोग किसी नियम का पालन करते हैं, जो किसी परिस्थिति और परिवेश में सही था, लेकिन कालांतर में वही नियम उचित रहे, सही रहे, उपयोगी रहे, यह कोई जरूरी नहीं। धर्मों के साथ यही हुआ है। लोग कहते हैं कि जो लिखा गया है, हमें वही मानना है। जो नियमों को आँखें मूँदकर मानता है, वह धर्मावलंबी रहता है और जो अपने विवेक का

सदुपयोग करता है और परिस्थिति के अनुकूल व्यवहार करता है वह आध्यात्मिक मनुष्य कहलाता है।

संत एकनाथ की कहानी मालूम है न? वे गंगोत्री से रामेश्वर गंगाजल ले गए थे। मंदिर के सामने एक गधा प्यास से तड़प रहा था। सभी धर्मावलंबियों को लगा कि इस जल को ले जाकर शिवलिंग पर ही डालना है। उस जीव को तड़पते देखकर वे द्रवित नहीं हुए। तब तक एकनाथ जी पहुँच गए। वे भी धर्मावलंबी थे, लेकिन उनमें धर्म की चैतन्यता थी, धर्म का विवेक था। उन्होंने कहा, 'मंदिर के सामने प्रभु प्यास से तड़प रहे हैं, कोई उन्हें जल देने वाला नहीं है। आखिर हर जीव ईश्वर का ही रूप नहीं होता क्या?' जो गंगाजल वे शिवलिंग पर अर्पित करने के लिए गंगोत्री से लाए थे, उसे गधे को पिला दिया। वही उनकी आराधना हो गई। उसी में उन्हें सुख-शांति की प्राप्ति हुई और ईश्वर का साक्षात्कार भी हुआ। यह है अध्यात्म और धर्म में अंतर।

हमारे पूर्वज आध्यात्मिक थे, धार्मिक नहीं। वे सभी को अपनाकर साथ चले। लेकिन जब हम अपने से दूर हो जाते हैं, अपने भावों से दूर हो जाते हैं, तब फिर अध्यात्म हमसे दूर हो जाता है। जीवन से अच्छाई और प्रतिभा दूर हो जाती है, जीवन में दुर्गुणों का वास होने लगता है। ये दुर्गुण ही हमारे जीवन, विचार और व्यवहार को विकृत करते हैं।

संन्यास की शिक्षा का आधार है—अपने आपको आध्यात्मिक संस्कारों से युक्त करना। यहाँ पर सभी तरह के लोग आते हैं। शैव भी आते हैं, वैष्णव भी आते हैं, सिख भी आते हैं, ईसाई भी आते हैं, मुसलमान भी आते हैं। किस प्रयोजन से? ताकि वे अपने आपको जान सकें, समझ सकें और अपने जीवन में सुख, सौंदर्य और शांति को अभिव्यक्त कर सकें। यह हमारी संस्कृति की आध्यात्मिक परम्परा है जिसे यहाँ पर एक अनुष्ठान के रूप में आप लोगों के सामने रखा जा रहा है ताकि आप इसके महत्त्व, इसकी गरिमा को समझ सकें और अपने जीवन में भी कुछ अच्छे संस्कारों को आत्मसात् करने का प्रयास कर सकें।

यही चातुर्मास का प्रयोजन है, यही संन्यास पीठ का भी प्रयोजन है। और यही हमारा काम होता है जब हम इस परिसर में आते हैं। यहाँ पर योग नहीं है, केवल अध्यात्म है। जो हम कर रहे हैं, वह हमारे संन्यास की साधना है। यहाँ जो कुछ हो रहा है, उसका प्रयोजन यही है कि हम कुछ समय के लिए संसार के विषयों से अलग होकर अपने आप को जीवन के सौंदर्य से जोड़ सकें। और उसकी अनुभूति अवश्य होती है। जो आध्यात्मिक अनुभव अभी क्षणभंगुर हैं, जो एक चिंगारी के रूप में आप अभी देखते हो, अगर वे धीरे-धीरे आपके जीवन में ज्वाला के रूप में परिवर्तित हो जाएँ तो कितना आनंद आएगा!

*—13 अगस्त 2015, पादुका दर्शन*

CHATURMAS SATSANGS

# Kabir Sangeet: Beyond Duality

*Swami Niranjanananda Saraswati*

The Kabir Sangeet that has been presented here by the group from Malwa is an incredible musical composition which cannot be classified into any kind of known music such as classical, rock, or pop. It has a unique distinction: it is the spiritual music of India.

The spiritual musical tradition in India is an ancient tradition which has been used by many eminent personalities, like Mirabai, Eknath, Sur Das, Tulsi Das, Kabir. There is a plethora of saints and illumined beings who expressed their spiritual experiences and attainments and the process of the spiritual journey through music and song.

What we have been hearing here are the compositions of Sant Kabir, one of the poet saints of India. The thrust of his verses is the description of saguna and nirguna. *Saguna* means with attribute and *nirguna* means without attribute.

On whom does this attribute apply? On the self. Therefore, saguna represents the self or the personality with attributes, and nirguna represents the self without attributes. One is the manifest and the other is the unmanifest. Whenever you identify an attribute, there is always a form and name associated with it. Without that the attribute is not perceptible. Similarly, without attributes no form or name can exist. These are the two states of the self, the consciousness.

Imagine an iceberg: there is a portion of the iceberg that you see above the water, and there is a large portion hidden under the water, which remains unseen. Look at a tree: you see the tree, the branches and the trunk above ground, but you don't see the roots that are hidden under the earth and which are the source of stability, nourishment and life for the tree. Similarly here too, what you see on the outside is the manifest identity, which has a name, shape and quality. This perception remains till the end. You cannot get out of the *sakara*, the saguna state, the manifest nature, because the moment you enter into *nirakara*, the nirguna state, the unmanifest, there's nothing, it is absence of everything, nothing exists. Even the experience does not exist there, for who is the experiencer in that moment?

As long as you have the experience, you know that 'I am the experiencer and the experience is different from me'. There is always duality; there is always 'me' as separate from 'what I am experiencing'. Even if you experience void, you are still

in duality; even if you experience peace and that awareness is there that 'I am experiencing peace', you are in duality; even if you experience luminosity and become happy that 'I am seeing light', you are in duality. The duality remains as there is a clear distinction between the experience and the experiencer. Even in samadhi, it is the experience and experiencer that recognize each other. It is only when the body, which is the vehicle for self-awareness, does not exist that you can enter the realm of the unmanifest. As long as you are in the body, you cannot experience the unmanifest; there is always duality.

People say that it is possible to merge the mind; however, even if you merge the mind, when the urge to relieve your bladder comes, your mind will come back into the body. Therefore don't make that hypocritical statement of "Oh I am so blissful, I am in the state of samadhi." The duality does exist and one cannot negate it. However, one can make the attempt and the effort to experience the higher dimensions of awareness which are beyond mind and senses, and those experiences are known as spiritual. They come from a different source which is non-capturable by the mind or the senses, and that source is the spirit.

The spirit is not indifferent to what you experience in your life, in your mental or emotional life. Just as your mind experiences situations, the spirit too experiences those situations. Therefore, by changing the quality of your

experience from gross to subtle to something higher, the behaviour of the mind changes. The change in the behaviour of the mind is identified as either a positive or a negative mood, a pious or a destructive mood.

The more this spiritual awareness becomes sustainable in your life, the more you are recognized as a person who is experiencing something different from normal. That experience is the spiritual creativity manifesting; it is the spiritual experience appearing in your mind and becoming known. It may not be verbalized, only experienced.

The music that we have been hearing, with Tipaniyaji and his group, represents this aspect of life, the experiences where saguna and nirguna are seen as two sides of same coin. The choice is yours as to which side you keep in front. If the head is in front then there will be better balance; if the tail is in front then there will be more discord. The sages from the past define all the dualities of life as two sides of the same coin, whether it is saguna and nirguna or dharma and adharma. They say that what you express in your life is what you have in front of you. If you see the tail in front of you, which is adharma, then that is what you express, that is what you become. If you see the head in front of you, which is dharma, then that is what you become and express.

Spiritual awareness is recognition of the nirguna in the saguna: the essence in the form. The essence is nirguna as it can't be classified or quantified. It is just one experience; a miniscule drop is enough to make you lose your head. You don't need a whole glass of it for the experience to overpower the manas, the buddhi, the chitta and the ahamkara. This is the theme of the music that we have been listening to and it has been a wonderful revelation, even for many Indians who have not heard this type of music before.

*– 25 August 2015, Paduka Darshan*

## चातुर्मास सत्संग

# नारायण भोज

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

आज दोपहर में आश्रम में भोज आयोजित किया गया था जिसमें मुंगेर के बहुत-से ऐसे लोग आए जिन्हें संभवत: कभी पेट भरकर खाने का भी अवसर नहीं मिलता। उनमें भिखारी और नगरनिगम के सफाई कर्मचारी शामिल थे। जो लोग सड़क पर झाड़ू लगाते हैं, टट्टी साफ करते हैं, उन सबको आज नारायण भोज में आमंत्रित किया गया था। आज नारायण भोज के विषय पर आपसे कुछ बातें कहना चाहेंगे। इसे नारायण भोज क्यों कहा गया है?

हमारी भारतीय परम्परा में त्रिदेवों का उल्लेख आता है। त्रिदेव कौन हैं? ब्रह्मा, विष्णु और महेश। ब्रह्मा जी का हम लोगों के साथ जो सम्बंध है, वह मात्र जन्म तक ही सीमित है। उन्होंने हमारी सृष्टि की, हमें जन्म दिया, हम यहाँ आ गए, आंखें खोल लीं, ब्रह्मा जी का काम खत्म। शिवजी का काम शुरू होता है जब आदमी मृत्यु को प्राप्त करता है, उसे गति देने के लिए। तारक मंत्र शिवजी तो देते हैं न! मणिकर्णिका घाट में शिवजी कौन-सा तारक मंत्र देते हैं– *ॐ रां रामाय नम:*– यह तारक मंत्र है। कान में फूँकते हैं मरते समय और मनुष्य को मुक्ति देते हैं।

ब्रह्मा जी का हमसे सम्बंध होता है जन्म के समय और शिवजी का हमसे सम्बंध होता है अपनी अंतिम श्वास में, मरण के समय। लेकिन जिंदगीभर सम्बंध रहता है उस तत्त्व से जो जीवन का पोषक तत्त्व माना गया है और वह है नारायण। भगवान नारायण का साथ जन्म से मृत्यु तक अस्सी-नब्बे साल जितने भी हैं, तब तक रहता है। उसी नारायण की खोज साधु अपने जीवन में करता है, उसी नारायण की पहचान साधु दूसरों के जीवन में करता है। खोज अपने जीवन में और पहचान दूसरों के जीवन में। इसीलिए तुम देखोगे कि साधुओं का जो अभिवादन है, वह *ॐ नमो नारायणाय* है। अब कोई *ॐ नम: शिवाय* बोल दे अपनी भावना से, लेकिन प्रचलित अभिवादन ॐ नमो नारायणाय ही है। *ॐ नमो ब्रह्माय* नहीं है, *ॐ नम: शिवाय* नहीं है।

हमारे गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी भी जब भक्ति मार्ग की और भक्ति से प्राप्त आत्मभाव की अवस्था की और आत्मभाव की अभिव्यक्ति, सेवा की शिक्षा लोगों को देते थे तो कहते थे कि आत्मभाव में केवल नारायण को ही देखना है जो सबके भीतर विद्यमान है। उन्होंने यह भी कहा कि वह ईश्वर, जो तुम्हारे भीतर बैठा है, तुम्हारे जीवन के अनुभवों से अलग नहीं है। ईश्वर तुम्हारे जीवन का द्रष्टा ही नहीं है, वह तुम्हारे साथ तुम्हारे सुख और दु:ख का भोक्ता भी है। हमारे गुरुजी हमेशा कहते थे कि जब तुम किसी भूखे को देखते हो तो इस विश्वास को लेकर चलो

कि उसके अंदर बैठा ईश्वर भी भूखा है क्योंकि वह मनुष्य की क्षुधा की अग्नि से अनजान नहीं है। जिस अग्नि का अनुभव मनुष्य अपने पेट में कर रहा है, उसी अग्नि का अनुभव वह ईश्वर भी कर रहा है जो मनुष्य के भीतर विराजमान है। अगर कोई कोढ़ी है, तो उसके भीतर में जो ईश्वर है, वह भी उस कोढ़ के रोग का भागीदार है, उसका अनुभव करता है। जब तुम किसी को चोट पहुंचाते हो, तो उसके भीतर बैठा ईश्वर भी उस चोट का अनुभव करता है। यही है आत्मभाव, उस ईश्वर को सभी में देखना।

हमारी भारतीय संस्कृति में उन लोगों को सहयोग देना जिनके पास अपनी जीविका का कोई साधन नहीं है, यह नारायण सेवा कहलाती है। आप भारत में कहीं पर भी देख लो जहाँ वैदिक सनातन परम्परा का निर्वाह होता है, वहाँ हर प्रकार की सेवा को नारायण सेवा ही कहते हैं। चाहे विकलांगों की सेवा हो, चाहे चिकित्सा की सेवा हो, चाहे अन्न का दान हो, चाहे वस्त्र का दान ही क्यों न हो, ये सब नारायण सेवा के अंतर्गत आते हैं। इसे शिव सेवा या ब्रह्म सेवा नहीं, नारायण सेवा कहते हैं।

हमारी संस्कृति और सभ्यता का यह मानना है कि जो व्यक्ति अपने और दूसरों के भीतर स्थित ईश्वर का सत्कार करना, सम्मान करना सीख जाए, उस व्यक्ति को सतत् ईश्वर की कृपा और अनुग्रह की प्राप्ति होती है। यही हमारे मनीषियों का मुख्य चिंतन भी रहा है। इस नारायण सेवा में सहयोग देने के लिए हमारे मुंगेर के युवाओं ने व्यवस्था का पूरा बीड़ा उठाया है। अगर हमारे मुंगेर के सभी नागरिकों में यह सम्मान करने की भावना आ जाए, तो मुंगेर निश्चित ही योग नगरी बन जाएगी।

*–13 अगस्त 2015, पादुका दर्शन*

SATYANAND YOGA II.5
SATYANAND YOGA II.5

Yajna
Poornahoti
2016

CHATURMAS SATSANGS

# Krishna Aradhana: Celebrating Unconditional Love

*Swami Niranjanananda Saraswati*

On this occasion of Krishna aradhana, let us not look at Krishna from a religious perspective but from a personality perspective, for he did definitely take birth, he did live thousands of years ago, he did participate in a mega-war, and he did give the knowledge of the *Bhagavad Gita* to Arjuna. That is reality. When he became a god, when people recognized him as an avatara, that is another matter. We are not talking of that, we are talking about him living on this planet as a person, as an individual.

In Krishna's life as an individual, his outstanding quality in every event and situation, was his ability to love unconditionally. Krishna is known as *prem avatara*, the incarnation of love. He had the ability to love everyone and make each person feel that he loved them intimately, that they were the only one he loved, yet his feeling for each one was unconditional. Nobody was more favoured by him than another, although people like to believe that 'I am the favourite'. Even between guru and disciple, disciples like to think that 'I am the favourite'.

When you think 'I am the favourite', or 'I want to be in close proximity', or 'I want to be loved, I want to be liked', you are highlighting a conditional nature of yourself, a desire, a need. The moment you express your desire, need and conditioning, unconditional love is brought down to a gross, sensorial and

selfish level. That is where you fail, for you do not understand the purity of love, you only understand the need and desire of love. When you understand the purity of love, that is the experience of the unconditional; when you understand the desire and need of love, that is the experience of the selfish and the conditional.

Krishna represents that pure expression, the pure sentiment of being one with all, as love only knows sacrifice and giving. Even in your own family situation, if you love somebody you are willing to sacrifice and give your own things for their sake. Love shows the absence of ego. Ego and love cannot coexist. If there is love, there is no ego; if there is ego, there is no love. Ego demands everything for oneself. In ego, the needs, the desires, the ambitions, the *vasana*, the passions, are highlighted and become the focus of your attempt to fulfil yourself. However, divine love represents the unconditional and pure nature. Like sunlight it shines equally on everyone; nobody can say, "I am closer to the sun" or "The sun is shining very brightly for me".

Of course the sun may seem to shine more brightly depending on your mood; if you are in depression the sun may not be so bright whereas if you are joyous and happy the sun is very bright. What you feel, however, does not change the behaviour, the character or the luminosity of the sun. The sun shines equally on everyone. In the same manner, the divine nature is able to give equally to everyone and not create any differentiation. Differentiation is the conditioned attitude, while seeing everything as part of a whole is the unconditional perception.

There are people who have experienced that divine, unconditional nature in their life, and Krishna was one of them. Therefore today he is recognized as an *avatara*, an incarnation of a cosmic, higher and pure power, which expressed and highlighted unconditional love in life, and showed the way to progress in life from the conditioned to the unconditional. We celebrate the Krishna Aradhana with this understanding, with this spirit.

*– 27 August 2015, Paduka Darshan*

चातुर्मास सत्संग

# रंग दे चुनरिया

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

चातुर्मास अनुष्ठान के अंतर्गत आयोजित श्रीकृष्ण आराधना का यही प्रयोजन है कि हम अपने आपको एक आध्यात्मिक चिंतन, संस्कार, विचार, वातावरण और अनुभव से जोड़ें, और एक बार अपनी भौतिक मानसिकता को त्यागकर एक ऐसे रंग में रंगें, जिसमें हमारी अपनी खुद की मर्जी नहीं रहे।

एक बार कृष्ण जी मथुरा में एक रंगरेज के यहाँ गए और उससे कहा, 'मुझे भी कपड़ा रंगना है, मुझे एक बाल्टी रंग दे दो।' रंगरेज कृष्ण जी से प्रभावित था। उसने एक बाल्टी रंग की दे दी। बाल्टी लेकर कृष्ण जी पहुँच गए मथुरा के चौराहे पर और वहाँ पर जोर-जोर से कहने लगे, 'यहाँ पर मैं वस्त्र रंगता हूँ। जो अपना वस्त्र रंगवाना चाहे, आकर रंगवा ले, मुफ्त में।' धीरे-धीरे लोगों की भीड़ लग गई। किसी ने अपना अंगवस्त्र दिया तो किसी ने धोती तो किसी ने कुर्ता तो किसी ने चादर। सबने अपनी-अपनी फरमाइश कही, 'मुझे हरा चाहिए, मुझे लाल चाहिए, मेरे लिए पीला कर दो, मुझे नीला पसंद है, मेरे लिए सफेद चलेगा। कृष्ण जी सबकी फरमाइश सुनकर वस्त्र बाल्टी में डालते गए और निकाल करके लोगों को देते गए, उसी रंग में जो वे चाहते थे।

ऐसा करते-करते सवेरे से शाम हो गई। लोगों की भीड़ अब बंद हो गई। कृष्ण जी अपनी बाल्टी उठाकर जाने वाले थे कि एक आदमी आया और बोला, 'मेरा एक कपड़ा रंगना बाकी है, आप रंग दीजिएगा?' कृष्ण जी ने बाल्टी नीचे रखी और कहा, 'कपड़ा दो। किस रंग में रंगना है, बोलो?' व्यक्ति बोला, 'उसी रंग में रंगिए जो रंग इस बाल्टी में है। सवेरे से शाम तक मैं देख रहा हूं कि बाल्टी एक ही है आपके पास, लेकिन आप उस बाल्टी से सभी रंग निकाल रहे हैं। जो जैसा कह रहा है, वैसा ही रंग आप दिए जा रहे हैं। मेरी अपनी कोई मर्जी नहीं है रंग की। जो रंग इस बाल्टी में है, उसी रंग में आप मेरे इस वस्त्र को रंग दीजिए।' यही हम सब की प्रार्थना होनी चाहिए। उसी रंग में रहना रे बंदे, उसी रंग में रहना, जिस रंग में परमेश्वर राखे, उसी रंग में रहना।

*–29 अगस्त 2015, पादुका दर्शन*

CHATURMAS SATSANGS

# Ramarchan: Invoking Perfection

*Swami Niranjanananda Saraswati*

The Ramarchan is a beautiful and unusual invocation. It is said that this invocation was done in the bygone ages by Brahma the creator. In one of the ages, after the dissolution of the last age and before the beginning of the new, Brahma was confused as to what he should do. Nothing was created at that time. Suddenly he heard an ethereal voice: "Perform the invocation of Ramarchan." Brahma performed the invocation, and then the process of creation started.

Ramarchan is an invocation offered to Rama. Now don't ask, "How did Brahma know about Rama when Rama had not yet taken birth?" I have already mentioned this was 'in one of the ages', in one of the *kalpas*. From the perspective of the Indian tradition, twenty-one kalpas have passed. Twenty-one times the earth has rejuvenated itself and creation has recycled itself; twenty-one times there was total dissolution and then recreation.

Even scientists are today saying that there has not been just one Big Bang, they have been able to hear ten Big Bangs through the instruments they presently have. If they were to have more sophisticated equipment, they would hear previous sounds also that continue to exist in space. The guna of space is *shabda*, sound. All the sound vibrations are contained in space. Even what we are saying is being recorded in the akashic record as vibrations in stillness. If you throw some ink on a white sheet and then keep throwing more ink, the sheet will be covered by ink but your first splash will also be there. In the same manner, in all the ages, different incarnations have taken place.

Also, not all the incarnations have taken place in this Kali Yuga. In fact, the age of incarnations was Satya Yuga. People call that the golden age, but that was possibly the worst, as that

was when the maximum number of avataras had to descend. Then came Rama's yuga, in which there were two avataras: Parashurama and Rama. Then came Krishna's yuga, with only one avatara. Then came Kali Yuga, and nothing so far, no major incarnation. Thus, Kali Yuga seems to be better, for when God does not see so much strife and terrorism that he has to come many times as he had to in Satya Yuga, it has to be a better time.

Rama is known as *maryada avatara*, the perfect being, and such perfection defines the limitation and the absolute potential too. In a perfect being, the dimensions are clearly defined. Grey areas are never perfect; defined things are always perfectly clear and Rama represents that. There is no grey area in his life. Everything is perfection manifest. Then after Rama came Krishna, who is known as *prem avatara*, the avatara of love.

These are the two things that are important for the cultivation of life too. Ego, *buddhi*, intellect, the body and the senses are not important. They have their role and function, but the important attributes are maryada and prem, perfection in expression and unconditional love. These are the two things that define a person as either good or bad. If there is no perfection of expression by the senses, mind, thought and speech, and everything is distorted, disturbing and destructive, then that person is never recognized as a good person. If the expression of love is only for oneself and there is total dislike for others, that person is never liked by anybody. It is the perfection of behaviour and action and thinking in life, and the expression of a universal common sentiment called love, which defines a person as either good or bad. It is not the knowledge that one has, not the arrogance or ego that one has, but perfection and unconditional love in life.

*– 22 September 2015, Paduka Darshan*

## चातुर्मास सत्संग

# अयोध्या में आसीन आराध्य

*स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती*

यहाँ पर पिछले दो महीने से चल रहे चातुर्मास अनुष्ठान की आज पूर्णाहूति है। चातुर्मास के इस कार्यक्रम में प्रेरणा और अनुशासन, दोनों यहाँ पर देखने को मिले हैं, और इस प्रेरणा के पीछे जिस देवी और देवता का हाथ है, वे हैं हमारे स्वामी शिवानंद जी और स्वामी सत्यानंद जी।

इस अनुष्ठान में कार्यक्रम तो अनेक हुए—हवन हुए, पूजा के कार्यक्रम हुए, अनेक तरह के लोग आए, अपनी-अपनी बात कही, अपना-अपना कौशल दिखाया। कभी भगवान आशुतोष की आराधना हुई तो कभी कृष्ण जी की, और कभी आवाहन हुआ माता लक्ष्मी और भगवान नारायण का। इस प्रकार आवाहन और आराधना सभी की हुई है, किन्तु चातुर्मास में निरंतर उपस्थिति भगवान राम की रही है। रामचरितमानस का मासपारायण जो चातुर्मास के पहले दिन आरम्भ हुआ, वह अंतिम दिन तक निर्विघ्न चला है।

भगवान श्रीराम हमारे पूज्य गुरुदेव, स्वामी सत्यानंद जी के आराध्य भी थे। हमारे गुरुजी ने सूर्यवंशी क्षत्रिय कुल में जन्म लिया था, और उन्होंने अपने सत्संगों में अनेक बार यह बतलाया भी है कि किस प्रकार श्रीराम से उन्हें अपने जीवन में नियमित प्रेरणा प्राप्त हुई। इन दो महीनों में हमने भी यहाँ पर उनकी कृपा का अनुभव किया है।

दो महीनों तक भगवान को यहाँ पर बांधकर रखने के लिए कुछ लोगों की आवश्यकता होती है। संतान को आखिर कौन बांधता है? पिता नहीं बांध पाता है

संतान को, लेकिन माँ बांध लेती है। इस चातुर्मास अनुष्ठान में हमारी रामायण मण्डली की माताओं का अद्‌भुत योगदान रहा है। हमें तो लगता है कि वास्तव में दो महीने का अनुष्ठान इन्होंने ही पूरा किया है। परेशानी तो काफी हुई होगी। घर के सब काम-काज से निवृत्त हो करके, अपने परिवार वालों को भी प्रसन्न करके, क्योंकि वे लोग नाराज़ हो गए तो नहीं आ पातीं, यहाँ रोज उपस्थित होना और दो महीने तक निरंतर एक निश्चित कार्यक्रम का संचालन करना, यह कोई छोटी उपलब्धि नहीं है। हम उनके आभारी हैं क्योंकि उन्होंने इस अनुष्ठान के आयोजन में हमारा पूरा साथ दिया है।

आज रामचरितमानस के पारायण का अंत भी हो रहा है, और रामजी की विदाई भी होगी एक कीर्तन के साथ– *अयोध्यावासी राम दशरथ नंदन राम*। दो महीने तक हमलोगों ने भगवान राम को उस मंच पर बिठाकर रखा है, अब उनसे बोल रहे हैं कि उधर से विदाई हो गई, अब आप वापिस चले आओ। यह कीर्तन भगवान का घर-बुलावा कीर्तन है। आखिर हर व्यक्ति का हृदय ही तो अयोध्या है न! लेकिन खेद की बात यह कि आप उसे मजबूत बनाकर नहीं रखते। मनुष्य जीवन में जो अयोध्या है, वह उसका दिल है और अयोध्या की जो दीवारें हैं, वे मर्यादा और प्रेम की दीवारें हैं जिनमें षड्‌रिपु प्रवेश नहीं कर पाते। जिस स्थान में रिपुओं का प्रवेश नहीं होता, जिस पर कोई विजय प्राप्त नहीं कर पाता, उसे कहते हैं अयोध्या।

दिल हमारा अयोध्या है, क्योंकि ईश्वर का वास दिल में होता है, दिमाग में नहीं। दिमाग में खुराफात है, और दिल में शुद्ध भावना। दिमाग में कपट, तो दिल में आस्था। हमारा अयोध्या है अपना दिल, लेकिन इस अयोध्या की दीवारों को हमलोग मजबूत नहीं कर पाए, इसलिए कोई भी अभी हमारे दिल में प्रवेश कर जाता है। अब हमें वहाँ भगवान को बुलाना है।

जब भगवान को दिल में बुलाते हैं, तो उनके लिए फिर वैसी व्यवस्था भी करनी होती है। घर में कोई अतिथि आते हैं तो उनके ठहरने, बैठने, खाने, पीने, सोने, नहाने की व्यवस्था होती है न? केवल सामान्य व्यवस्था नहीं होती, जो अच्छी हो सकती है, वह की जाती है। तो जब जगत् के सम्राट् हमारे भीतर वास करने के लिए आँएगे तो क्या केवल एक आसन देकर कहेंगे कि यहाँ बैठो या हम अपनी ओर से पूरी व्यवस्था करेंगे? जहाँ बैठे हैं, वह कमरा पूरी तरह साफ-सुथरा हो, वहाँ पर हवा हो, वहाँ पर प्रकाश हो, वहाँ पर दुर्गंध न हो, वहाँ पर अगरबत्ती जला लो, वहाँ पर यह कर लो, वह कर लो, मतलब हम एक अच्छी व्यवस्था का ख्याल करेंगे।

जब अच्छी व्यवस्था का खयाल करेंगे तो दूषित तत्त्वों को तो बाहर निकालना होगा। झाड़ू लगाते हो तो कचरा अपने घर के किनारे रखते हो या कमरे के बाहर करते हो? बाहर करना पड़ता है। इसी प्रकार अपने विकारों को भी बाहर करना पड़ता है, तब जाकर व्यक्ति भक्त बनता है। गीता में पढ़ लो–

*अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।*
*निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥*
*सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।*
*मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥*

इस प्रकार भक्तों के लक्षणों के बारे में पूरा कहा गया है। इन्हें अपनाना तभी संभव हो पाता है जब हम षड्रिपुओं को अपने अयोध्या नगर से बाहर निकाल देते हैं। तब वहाँ पर रामजी का साम्राज्य स्थापित होता है। अभी हम इस कीर्तन के माध्यम से भगवान को बोल रहे हैं कि बाहर का आसन छोड़ो और हमारे हृदय में आ करके बसो।

*–28 सितम्बर 2015, पादुका दर्शन*

CHATURMAS SATSANGS

# Poornahuti of Chaturmas

*Swami Niranjanananda Saraswati*

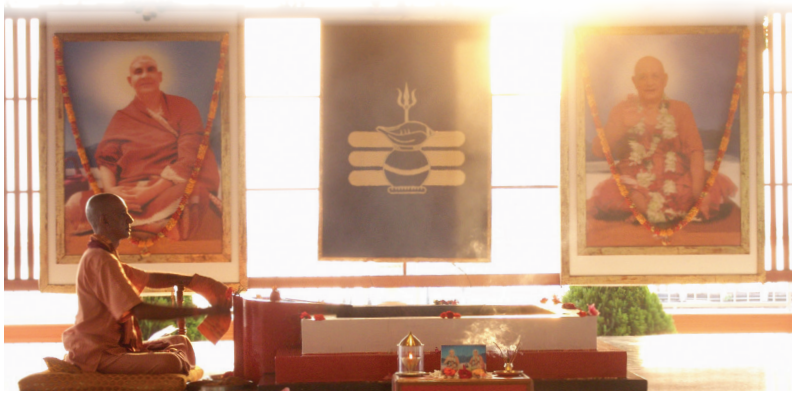

The two-month long Chaturmas has had an inspiring and disciplining effect on people. Inspiring, as every day something has happened that has kept us connected with the sense of purity in life, the sense of happiness and fulfilment in life. Every day we were constantly being reminded that there is something more than the tensions and frustrations of life. There is an experience of peace and connection which is much deeper and more fulfilling than material connections. From that perspective, it has been very inspirational to see the variety of ways in which one can connect.

It has been disciplining too, and without discipline in life there is no achievement. Discipline means following a system and a process. After all, when you cook you follow a system: what goes in first, what goes in next, what goes in third and fourth. That is the discipline of food. As long as you follow that pattern and system, the food is tasty. The moment you break that system and impose your own ideas, the breaking down of the system will be destructive and distractive. Here what we have witnessed is disciplining of the mind through the various programs and events that have taken place.

Two people have been constant partners during this anusthana. One is guru whose inspiration directed and inspired this event, and the second is Sri Rama who has been here from day one to the last day, as every day in the Masparayan we have chanted his name here. For two months he was continuously present while others came and went. Krishna came and left, Shiva came and then settled at some place, Lakshmi came and left with Narayana, Narayana came and went back to his abode.

Many people came and went, including many of you, who came for one day then left for a week and came back for a week and left for a few. However, the constant presence here has been of guru and Rama through the chanting of the *Ramacharitamanas.* The people who conducted this have also been equal partners in the anusthana as they have been present for two months regularly, continuously, without a break, in sickness, in grief, in happiness. These are the mothers who form the Ramayan Mandali. They organized their lives in such a manner that they were able to look after all the needs of their households and families, keep everybody happy, and make time to come here. When you are a housewife, it is possible to do it for one day or two days, but to sustain it for two months is not easy, and they have done it, so they are equal partners in this event. They have been with me every day, and today is the culmination of this *Ramacharitamanas* chanting. We now say goodbye to Sri Rama, Sita and Hanuman and then the final progam is the Satyanarayan Katha.

*– 28 September 2015, Paduka Darshan*

# The Gift of Samskara

*Swami Satyasangananda Saraswati*

The true gift of a paramahamsa is expansion of awareness, not blankets and clothes – that anybody can give; any organization that has a good intention can do that. However, the growth of awareness, the expansion of awareness, is the true gift that children such as those in Rikhia need because they have to move with the pace of the world. Sri Swamiji wanted them to move with the pace of the world, and not be left behind like a frog in the well. The world today is changing so rapidly, therefore the people who inhabit the world have to move at that pace to be able to cope with the demands. For that they have to discover their own potential.

It is all right to provide education, however, along with education there is another aspect of life and that is *samskara*: the inner development of values, of character, of personality. That is what the children of Rikhiapeeth are getting, without asking, free of cost, on a platter served to them by Gurudev. They are receiving samskara. Education alone is not enough. When you lose a loved one, face failure and crisis, then your education is not going to help you, it is the samskara that is going to help you. It is the samskara that gives the inner strength, the clarity, the focus, the ability to withstand those inner crises which are so devastating that they completely alter your life. You are going successfully in one direction, then you have an emotional crisis and everything changes; you never recover from that. That is where the need of samskara comes, to cope with the life that you are facing.

Crises surround you from every side in the form of disease, lack of finances, and so on. Maybe you don't have the opportunities that you want or crave; desires are so vast and their fulfilment so slow, and sometimes they don't even get fulfilled. How do you face all that and remain happy? Because the objective is to be happy. That is what Sri Swamiji's teaching was: *Har haal mein masti lao* – remain mast. *Mast* means more than just being happy. 'Happy' is a very small term. Mast means you don't lose your peace of mind, your smile, your radiance, your glow, you don't become tired, you don't become 'out of it'. That is what masti is.

To be able to smile in every situation, that is an achievement. Can we do that? That was Sri Swamiji's teaching. That is only possible if you have the samskaras; education will not give you that. Your education can bring a smile to your lips, it can bring a smile to your mind, but what can bring a smile to your heart is samskara.

*– 24 December 2015, Yoga Poornima, Rikhiapeeth*

# Faith

*Swami Niranjanananda Saraswati*

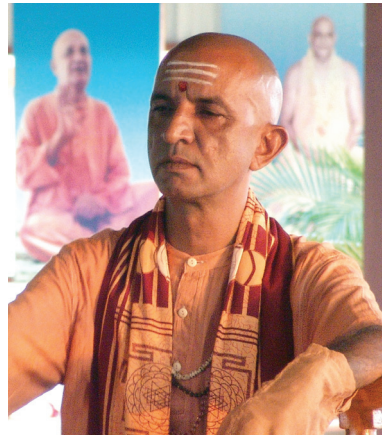

There is a word in Sanskrit: shraddha, which is often translated as 'faith'. However, faith has various connotations. One connotation is religious: having faith in God. Another connotation is spiritual: having faith in one's inner strength. A third connotation is faith as a deep belief, a conviction. In this manner, faith can be defined in many ways.

I look at faith as spiritual attainment, as a spiritual quality, a spiritual strength and energy. Belief and faith are not the same. Belief can be logical and rational, but faith may not be logical or rational. If it is not logical and rational, then is it irrational and illogical? No.

The world is governed by two principles: the sentient and the insentient. The insentient uses the sentient to express itself. In the same manner, if shraddha, or faith, is something spiritual and beyond the layers of logic, then belief becomes the medium through which it can be expressed. Hope is the means by which that faith can be expressed.

What then is faith? If we say it is spiritual energy, that is one aspect of it. If we say it is deep conviction, that is another aspect. If we say it is attainment of spiritual strength, that is a third aspect of it. However, what is indicated by faith? When do you have faith? When faith is complete, is there any question or doubt in one's mind? If questions and doubts come, then it is not faith. If questions and doubts do not come and there is conviction, understanding, satisfaction

and acceptance then that becomes part of faith. Knowing and accepting is logic, knowledge, rationality, but faith is neither knowing nor understanding, it transcends both knowing and understanding and takes you to another non-linear dimension. In that non-linear dimension, the effulgence of the shakti of faith is experienced and that shakti can then move mountains.

There is the example of Sri Rama from ancient times. He encountered two peculiar situations in his life. The first was when he was exiled and living in Chitrakoot. One day his brother Bharat arrived there with the royal court and the army to ask him to return to Ayodhya. Everybody, all the people in the villages and towns through which this caravan passed, began to believe that Bharat was going to kill Rama so he could rule the kingdom without opposition. This thought even came to the mind of Nishad, the ferrymen who had taken Rama across. It came to the mind of Lakshmana, the brother of Rama and Bharat, that 'Bharat is coming to dispose of us'.

They went to Rama and said, "Look, Bharat is marching here with a huge army and we have to prepare ourselves to fight. His intention is to kill us otherwise why would he bring the army? He would just come with the royal court." Everybody began to prepare for war, except Rama. He said, "No, I know the nature, the character, the traits of Bharat, I know how he thinks. The thought of murdering me is alien to him; it will never come to his mind. He has come with the army, but he has come in friendship." Was that Rama's belief or faith in his brother?

The second incident took place when the monkey patrols were going out in all directions to search for Sita. When the patrols were leaving, Rama called Hanuman and gave him the ring and said, "When you find Sita, give her this ring." This brings to mind a few questions. If Rama knew that Hanuman was the person who would find Sita, then why did he allow this elaborate patrolling to take place throughout India? After all, it would have been a massive organizational exercise. Imagine the preparations and the logistics for troops to be sent to every nook and corner, cave and forest, town and city to search for

Sita; it would have been a logistical nightmare. Moreover, it had to be done within only a few months. If Rama believed that the other monkeys would fail, why did he allow them to go? He could have stopped them.

Did Rama place his faith in Hanuman thinking he was the only one who had the ability to find Sita? If that was the conviction in Rama's mind, he could have just sent Hanuman, without organizing this massive search party. What does that indicate? Faith is understanding and knowledge, it is conviction that good will prevail. This conviction comes when you connect with your own goodness.

Your own goodness is the strength of your spirit, *atma*. The contaminated traits are of the mind and the pure traits are of the atma. You live in the contaminated traits of the mind but you are seeking the purity of the spirit. In your stress-filled life you are searching for contentment, moving from the dissatisfactions of the mind to the contentment of the spirit. Dissatisfaction of the mind will lead to stress and anxiety, but contentment of the spirit will lead to *shanti*, peace. Therefore, it is spiritual awareness that gives birth to faith. This faith connects with the spiritual power, which can then work wonders. The connection between people who have faith can work wonders. It is the quality of faith which is required in spiritual life; everything follows from that. Everything falls in place after you have the foundation, the baseline of faith.

*– 6 May 2015*

---

**Satsangs on Guru Bhakti Yoga**: *Guru Bhakti Yoga is a monthly sadhana dedicated to Sri Swami Satyananda Saraswati, who attained mahasamadhi on 5th December 2009. Conducted in Satyam Udyam (Akhara), the two-day anusthana takes place on the 5th and 6th of every month to commemorate Sri Swamiji's attainment of Shiva consciousness and his union with Cosmic Shakti. This is a special period of remembrance, and the satsangs Swami Niranjan delivers at the end of these evenings are particularly poignant; through them he helps us to connect directly with the spirit of Sri Swamiji, who brought light and love into our lives.*

**गुरु भक्ति योग पर सत्संग**

# गुरु का सहारा और गुरु का प्रेम

*स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती*

रुद्राभिषेक के साथ आज का यह गुरु-भक्ति योग कार्यक्रम पूरा होता है, लेकिन कार्यक्रम के समापन के पूर्व एक विशेष कार्य करना रह गया। आज बाल योग मित्र मण्डल की एक बच्ची, रोशनी का जन्मदिन है। रोशनी ने एक शर्त रखी थी। वह कहती है कि आज के दिन मेरा जन्म इस धरती पर माता के गर्भ से हुआ, और मैं चाहती हूँ कि इस दिन मेरा आध्यात्मिक जन्म भी हो। इसलिये शारीरिक जन्मदिन के साथ आज इसका मंत्र दीक्षा के द्वारा आध्यात्मिक जन्म दिवस भी होगा, और आज से यह डबल-बर्थडे मनायेगी!

इसको जब हम देखते हैं तो अपना बचपन याद आता है, क्योंकि निश्चित रूप से हमारे जीवन में तीन लोगों का योगदान रहा है और चौथे की कृपा रही है। जिसकी कृपा रही है वह है ईश्वर, और जिनका योगदान रहा है वे हैं माता, पिता और गुरु। माता-पिता निश्चित रूप से जन्म देते हैं, लेकिन अब इस आधुनिक युग में संस्कार नहीं दे पाते। पूर्व काल में माता-पिता जन्म के साथ बच्चों को धर्म-संगत और न्याय-संगत संस्कार की शिक्षा भी प्रदान किया करते थे और इसीलिये माता-पिता को हमारी संस्कृति में प्रथम गुरु माना गया है। जो संस्कार और विचार हमें माता-पिता से मिलते हैं और जो हमें धर्म और न्याय के मार्ग पर ले जाते हैं वे हमारे जीवन के, हमारे भविष्य के आधार बनते हैं। पहले ऐसा हुआ करता था,

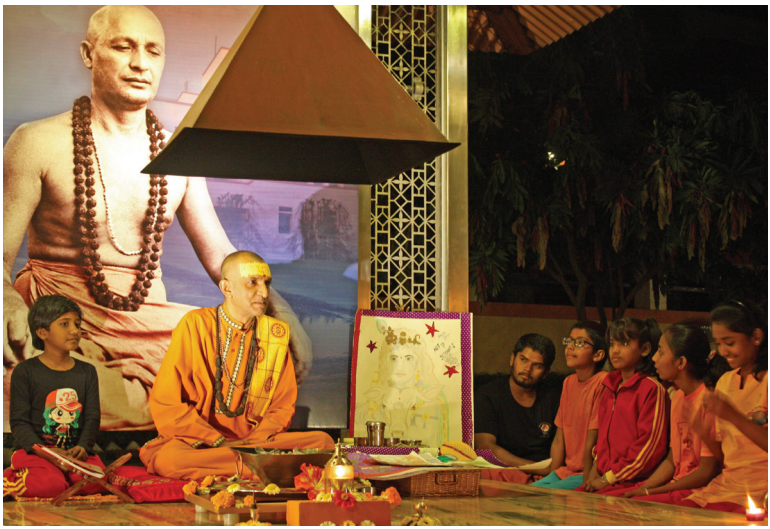

लेकिन जब से आधुनिक सभ्यता का आगमन हमारी संस्कृति में हुआ, तब से तकनीकी और भौतिक सम्मोहन में आकर हम भौतिकता की ओर जा रहे हैं और अपनी संस्कृति के मौलिक संस्कारों को भूल रहे हैं।

अगर आप अपने समाज को, अपने परिवार को और स्वयं के जीवन को भी एक बार देखेंगे तो पायेंगे कि आजकल के माता, पिता और अभिभावक बच्चों को संस्कारों से नहीं, बल्कि महत्त्वाकांक्षाओं से लादते हैं–तुम्हें बड़ा होकर यह करना है, तुम्हें डॉक्टर बनना है, तुम्हें इन्जीनियर बनना है, तुम्हें आई.ए.एस.ऑफिसर बनना है। मतलब जो सबसे ऊँचा पद है वहाँ तक तुम्हें पहुँचना है। अभिभावक अपनी संतानों के कंधे पर ऐसी ही महत्त्वाकांक्षाओं का बण्डल रखते हैं, लेकिन संस्कार नहीं दे पाते।

गुरु शब्द की व्याख्या लोग प्राय: इस प्रकार करते हैं कि जो हमारे जीवन से अज्ञान के अंधकार को दूर करे और ज्ञान के प्रकाश से जीवन को आलोकित करे। ऐसी पूर्व काल में लोग गुरु की परिभाषा दिया करते थे और आज भी लोग इसी परिभाषा को लेकर चलते हैं। लेकिन आधुनिक संदर्भ में गुरु ज्ञान नहीं देते और न ही अज्ञान के अंधकार को दूर करते हैं। पिछले पचास वर्षों से जब से मैं इस मार्ग में आया हूँ, यही देख रहा हूँ कि आदमी गुरु की शिक्षा को सुनता जरूर है, लेकिन आत्मसात् नहीं करता। सुनने की क्षमता हर मनुष्य में है, लेकिन समझने की, जीने की, आत्मसात् करने की क्षमता किसी में नहीं है।

गुरुओं के बारे में लोग अच्छा-अच्छा कहते जरूर हैं कि गुरु बड़े विद्वान् हैं, बड़े ज्ञानी हैं, शास्त्रों के ज्ञाता है, देश-विदेश जाते हैं, उनके बहुत सारे चेले हैं, लेकिन प्रश्न उठता है कि तुमने उनकी शिक्षाओं से अपने जीवन में क्या अपनाया है, किस चीज का आचरण कर रहे हो। अपने को तो कोई नहीं देखता। इसी वजह से आज हमारे देश में गुरु संस्कार नहीं दे पाते हैं, और लोगों का गुरु के साथ जो सम्बन्ध होता है वह समस्या-निदान का होता है, डॉक्टर का होता है, कंसल्टेंट का होता है। मुझे यह समस्या है, मैं कैसे इस समस्या से बाहर निकलूँ–यह मूल प्रश्न है हर व्यक्ति का। लेकिन अपने जीवन को अच्छे संस्कारों से कैसे पल्लवित करूँ, यह आज तक हमसे किसी ने नहीं पूछा, न भारत में न ही दुनिया के किसी अन्य देश में।

हर व्यक्ति अपनी समस्या का समाधान चाहता है, लेकिन अपने आपको गुरु की शिक्षाओं से दूर रखता है, उन्हें आत्मसात् नहीं करता। इसलिये हमने तो गुरु की परिभाषा बदल दी है। गुरु के ज्ञान का जब कोई महत्त्व ही नहीं तब फिर यह क्यों कहना कि वे हमारे जीवन के अंधकार को दूर करते हैं। अंधकार तो दूर तब होगा जब तुम उस प्रकाश को अपने जीवन में स्थान दोगे। अपने कमरे के दरवाजे बन्द रखो और कहो कि यहाँ सूर्य की रोशनी नहीं आ रही है तो यह तुम्हारी मूर्खता है। तुम लोगों के खिड़की-दरवाजे सब बंद हैं, कहीं से ज्ञान की रोशनी का प्रवेश संभव ही नहीं है। अब गुरु की यह भूमिका हो गई है तुम्हारे जीवन में। मैं गलत

नहीं कह रहा हूँ, मैं इस चीज को प्रतिदिन भुगतता हूँ। चेला आता है, कहता है कि ऐसी तकलीफ है और उसका निदान माँगने लगता है।

लेकिन जब छोटी अवस्था में हमें गुरु का सान्निध्य मिलता है तो हम गुरु के पास महत्त्वाकांक्षा या परेशानी को लेकर नहीं जाते, बल्कि एक सुन्दर भाव के साथ जाते हैं। गुरु के सान्निध्य में हमें अच्छा लगता है, हमें आनन्द मिलता है, हमें सुख मिलता है। इसी भाव के साथ हम अपने गुरु के साथ रहे और इसी भाव के साथ हम इन बाल योग मित्र मण्डल के बच्चों के साथ रहते हैं। इनको क्या हम सत्संग देते हैं? नहीं। इनके साथ खेलते हैं। कभी यो-यो जैसा कोई खिलौना मंगाकर इन सबको देते हैं कि खेलो। सत्संग-प्रवचन तो इनके साथ होता नहीं, मस्ती ही होती है, पर उस मस्ती में ये बच्चे जो संस्कार और विचार प्राप्त करते हैं, इन्हें जिस श्रद्धा और विश्वास की प्राप्ति होती है, वह उनके जीवन में संस्कारों को प्राप्त करने के लिये आधारशिला बनते हैं। मैं कही-सुनी बात नहीं, अनुभव की बात बोल रहा हूँ, क्योंकि गुरुजी के साथ मेरा ऐसा ही सम्बन्ध रहा। हम पहली बार चार साल की उम्र में मुंगेर आये। वापस गये और फिर छः साल की उम्र में स्थाई रूप से आ गये। तब से हम मुंगेर के नागरिक बने हैं।

जब हम गुरुजी के साथ रहते थे, तो क्या करते थे? खेलते थे, कुश्ती करते थे उनके साथ। पता नहीं बचपन में हमने उनको कितनी बार खेल-खेल में मुक्का मारा है, कितनी बार लात मारी है। उनके साथ सोते थे। सोते समय कोई बच्चा स्थिर तो रहता है नहीं, पूरे बिस्तर का चक्कर काटता है, हाथ-पैर सब चलाता है। हम भी वही करते थे। रातभर स्वामीजी को अपने हाथ-पैर से मारते रहते थे,

बिस्तर का चक्कर लगाते रहते थे। वे बेचारे हमें सहते थे। जो भी करतूतें हमने जाने-अनजाने में की होंगी, सब कुछ सहा उन्होंने, लेकिन कभी डाँटा नहीं, कभी किसी चीज को करने से रोका नहीं, बल्कि स्वतंत्र छोड़ दिया। उनके सान्निध्य में जो संस्कार हमें मिले उन्होंने ही आज हमें बनाया है जिस रूप में आप देखते हो।

ऐसा भी नहीं कि उनके साथ आजीवन रहे। ग्यारह साल की उम्र में उन्होंने हमें विदेश में अकेला छोड़ दिया। उस समय न मोबाइल फोन था, न टेलिविजन था, न इन्टरनेट था, न ई-मेल था। संपर्क करने का कोई साधन नहीं था। यहाँ से विलायत चिट्ठी जाने में तीन महीने लगते थे, जबकि आजकल तो वॉट्स-एप में तुरंत खबर हो जाती है। वैसी परिस्थिति में अनजान देशों में, अनजान लोगों के साथ रहना, अनजान सभ्यताओं से पाला पड़ना और वह भी अकेला ग्यारह साल का लड़का। लेकिन अकेले रहते हुए भी गुरु के नाम से जो ऊर्जा और शक्ति मिलती थी, उसने हमारे जीवन में दूरी को कभी खलने नहीं दिया।

स्वामीजी ने हमसे कभी नहीं कहा कि बेटा, तुम हमेशा सच बोलो, हमेशा धर्म के मार्ग पर चलो, हमेशा अच्छा करो। उन्होंने कभी इस प्रकार की शिक्षा नहीं दी। आज अपने गुरु के सान्निध्य की जो स्मृतियाँ मेरे मन में हैं उनमें केवल प्रेम और सहारा दिखलाई देता है। गुरु का सहारा और गुरु का प्रेम—ये दो चीजें शिष्य के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण होती हैं। ग्यारह साल की उम्र से जब तक हम बाहर रहे, हमारा यही अनुभव रहा कि प्रतिपल, प्रतिदिन अनजान देशों में, अनजान परिस्थितियों में गुरु का सहारा और प्रेम मिलता रहा। उसी ने हमें शक्ति प्रदान की और उसी ने फिर हमारे आचरण को अच्छा बनाया।

अगर गुरु हम पर विश्वास करते हैं जितना उन्होंने हम पर किया तो हमें उस स्तर तक उठना पड़ेगा। वह प्रयास, मेहनत और परिश्रम हमने अपने जीवन में किया भी। अपनी अपेक्षाओं को पूरा करने का प्रयास कभी नहीं किया, बल्कि गुरुजी जो चाहते थे उसे ही हमेशा प्राथमिकता दी और पूर्ण करने का प्रयास किया। हमने पाया कि उससे हमें स्वाभाविक रूप से जो संस्कार मिले वे हमारे जीवन में विकास, शिक्षा, संयम आदि के लिये बहुत सहायक सिद्ध हुए। यह एक बहुत बड़ी चीज है। इसको समझाया नहीं जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध क्या होता है? ऐसा प्रश्न करना निरर्थक है क्योंकि इसका कोई उत्तर नहीं दे सकता। यह मात्र एक अनुभव है और इसे वही अनुभव करता है जिसके जीवन में श्रद्धा और विश्वास है। तुलसीदास जी भी कहते हैं कि अगर तुम्हारे भीतर श्रद्धा और विश्वास नहीं, तो सिद्ध होकर भी तुम अपने भीतर स्थित ईश्वर का अनुभव नहीं कर सकते।

*भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।*
*याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥*

इस बात को याद रखना कि श्रद्धा तथा विश्वास हमारी भारतीय संस्कृति के दो आधार हैं। इन्हीं के बल पर हमारी संस्कृति आज तक जीवित है। जहाँ श्रद्धा और विश्वास न हो, मन में केवल प्रश्न-चिह्न ही रहें, उन संस्कृतियों और उन सभ्यताओं का नाश हुआ है। हमारी सभ्यता और संस्कृति की सबसे मूल्यवान् धरोहर श्रद्धा और विश्वास है, जिसके बल पर हम अच्छाई के साथ, सुन्दरता के साथ, परमतत्त्व के साथ, गुरु के साथ और ईश्वर के साथ अपना एक सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। एक बार वह सम्बन्ध स्थापित हो जाए तो फिर जीवन में केवल शुभता और मंगलता का ही अनुभव होता है।

यह हमारा व्यक्तिगत अनुभव रहा है अपने गुरु के साथ, और इसलिये जब रोशनी ने कहा कि शारीरिक जन्मदिन के साथ आज मेरा आध्यात्मिक जन्मदिन भी हो, तो हमें बहुत प्रसन्नता हुई कि चलो इस बच्ची के लिए एक अच्छे संस्कार का एक दरवाजा खुला है। हमें विश्वास है कि एक दिन अच्छे संस्कारों से युक्त होकर वह हम सबके लिए प्रेरणा बनेगी।

*–5 जून 2016*

---

**गुरु भक्ति योग पर सत्संग –** *गुरु भक्ति योग श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की स्मृति को समर्पित मासिक साधनात्मक अनुष्ठान है। श्री स्वामीजी 5 दिसम्बर 2009 को महासमाधि में लीन हुए थे और 6 दिसम्बर को उन्हें रिखियापीठ में विधिवत् भू-समाधि दी गई थी। प्रत्येक महीने की 5 और 6 तारीख को सत्यम् उद्यान में आयोजित इन अनुष्ठानों के माध्यम से श्री स्वामीजी के शिव और शक्ति तत्त्वों से संयोग को मनाया जाता है। इस साधना के दौरान स्वामी निरंजनानन्द जी द्वारा दिए सत्संगों में एक विशेष ऊर्जा और प्रेरणा रहती है जो श्रोताओं के हृदय को अनायास छूकर उन्हें श्री स्वामीजी के और समीप ले जाती है।*

# Value of Satsang

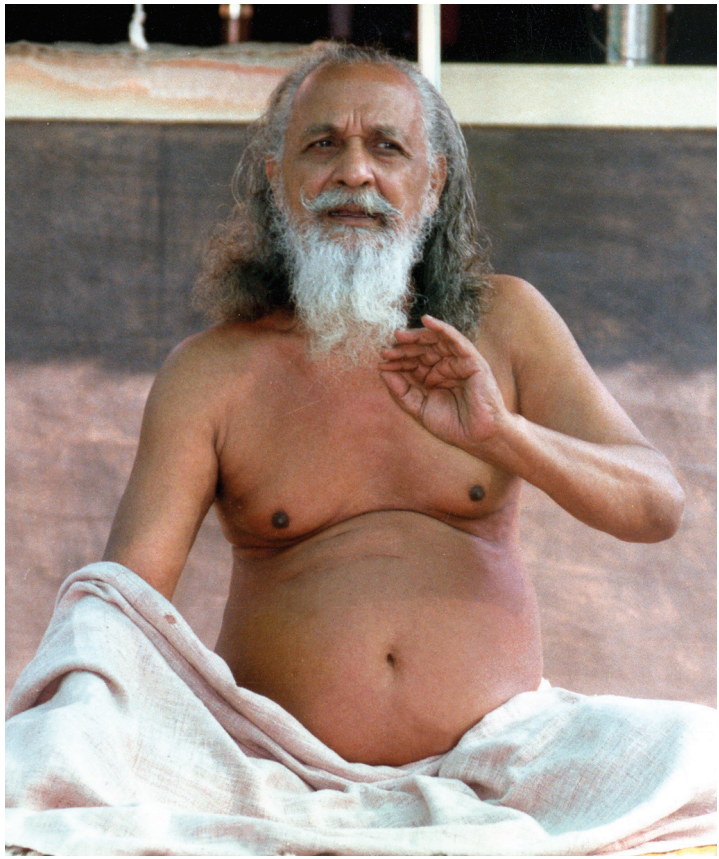

*Satsangatve nihsangatvam nihsangatve nirmohatvam*
*Nirmohatve nishchalatattvam nishchalatattve jeevanmuktih.*

Through the company of the good non-attachment arises, through non-attachment arises freedom from delusion, through freedom from delusion, the experience of immutable reality, from experiencing the immutable reality, the state of *jivanmukti* (liberated while alive).

*– Mohamudgara by Sri Adi Sankaracharya (v. 8)*

# Meditations for Walking the Path

*During the Chaitra Navaratri this year, a series of meditations was given, indicating the sequential progress on the spiritual path and the qualities one requires at each stage. Simultaneously, a form of the Cosmic Mother was invoked to give strength to these qualities. The meditations are being reproduced serially.*

**Introduction**: This Navaratri, we will go on a journey, a journey of transcendence, with the help of the Cosmic Shakti. We shall invoke the Shakti within ourselves to overcome our limitations. Each day, we will take one step forward – to where we all want to be, towards that space where there is love, there is kindness, there is oneness, within and around. We can create that space and this Navaratri we shall make a conscious effort to do so. It is a space where the differences have dissolved, the anger, the frustrations, the feelings of separation, fear and hatred – have all dissolved. Instead, the jewel of the Devi shines. As you may know, the Devi presides over Manidweepa, the island of the jewel. Our journey is to that Manidweepa, to find that jewel, and to experience the joy of its rainbow rays within us and all around us. And if our intention is pure, the Mother is bound to come to help us and lead us there.

**Stage 1: Beginning the journey by invoking honesty and fearlessness**

Prepare for the practice of meditation by adjusting your posture. Make sure the spine is upright, the hands are held in a mudra and the eyes are closed. Allow the body to become comfortable, balanced, steady, and still . . . Now shift the awareness to your breath and allow it to become deep and long . . . And let the awareness of the breath bring you fully into the present moment. No other thought, no other experience, only this moment . . . In this awareness of the present, also

be aware of where you are – see your surroundings with your closed eyes . . . Listen to the different sounds in the environment . . . keep expanding your awareness to listen to the most distant sounds . . . Now once again contract your awareness back into yourself . . . into your body . . . into your breath . . . into your mind . . . into the depth of your mind . . . into that space where there is complete silence and stillness.

The journey begins here. Imagine that today is the day that you begin a new journey. Imagine that you are a newborn child, who has no past, no future, only the now, only the present. Feel yourself as a newborn child, naked, free of all impositions. All the thoughts that you have had, all notions, all worries, all anxieties – you are free of them. You are free of every idea, every concept, every conditioning. You are fresh, you are new. You are not marked by time.

You are completely honest in your freshness, in your newness. All your pretensions, all your masks are dropped. Any untruth that you have ever spoken, ever lived, is dropped. You are fearless in your honesty. To begin the spiritual journey, you need to be completely honest and totally fearless. But there has to be unshakeable strength in these qualities, which only the Cosmic Shakti can bestow. Therefore, invoke her to experience and strengthen these qualities that are already within you.

See the Cosmic Mother before you, in her splendid form. Invoke her to open the door into this journey. Feel her love, feel her help, feel her power. In her presence, you are *satya*, you are truth, you are *nirbheeka*, you are fearless. With this feeling and with this invocation our spiritual journey begins.

Holding on to this feeling and invocation, we shall end our sadhana. Visualize a flame in your heart space and imagine that it is effulgent with the qualities of honesty and fearlessness. Feel its glow spreading through your entire body and mind. With the awareness held on this flame we shall chant Om three times and then the Shanti Path. ■

# चातुर्मास की छटा निराली

*चातुर्मास की छटा निराली*
*संन्यास परम्परा में है छाई।*
*दिग-दिगन्तर झूम उठे जब*
*राम-सिया की कथा सुनाई॥*

*बाऊल के संगीत हैं निर्गुण*
*कबीर पंथ की अमृत वाणी।*
*शहनाई की गूँज ने अनुपम*
*सीता मईया की ब्याह रचाई॥*

*श्री सत्यमेश्वर के शृंगार का*
*नहीं है कोई पारावार।*
*ज्योतिर्लिंगों के दर्शन कर*
*प्रकट हुए सबके उद्‌गार॥*

*सुध-बुध सबकी बिसर गई*
*सुन कान्हा के बंसी की धुन*
*हवन, आराधना, गरबा नृत्य से*
*संन्यास-पीठ हुआ मगन॥*

*बलिहारी गुरुदेव निरंजन*
*खोला अमृत का भंडार।*
*भारत की अध्यात्म-संस्कृति का*
*गाड़ा झंडा फिर एक बार॥*

*शिवानन्द की अमृत वाणी*
*सत्यानन्द का योग प्रचार।*
*गुरु निरंजन के हैं मूल-मंत्र अब*
*सद्‌विचार और सद्‌व्यवहार॥*

–संन्यासी योगप्रिया, पटना

# Yoga Publications Trust

## Bhakti Sadhana
## भक्ति साधना

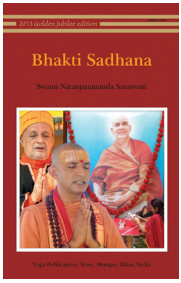


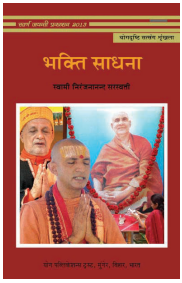


On the occasion of Guru Poornima in 2009, Swami Niranjanananda gave a series of satsangs on the theme of bhakti. In his discourses, Swamiji presented the classical definitions as well as practical sadhanas to follow this path of spiritual progress. The satsangs reach right into the heart of the aspirant and make him see the world from a new perspective, full of softness and contentment. The book is an invaluable gift for all those who have had a glimpse of bhakti, the way of channelling emotions and positive living.

**For an order form and comprehensive publications price list, please contact:**

**Yoga Publications Trust**, Garuda Vishnu, PO Ganga Darshan, Fort, Munger, Bihar 811201, India
Tel: +91-6344 222430 , Fax: +91-6344 220169

A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request.

हरि ॐ

सत्य का **आवाहन** एक द्वैभाषिक, द्वैमासिक पत्रिका है जिसका सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जा रहा है। इसमें श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती, श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती एवं स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की शिक्षाओं के अतिरिक्त संन्यास पीठ के कार्यक्रमों की जानकारियाँ भी प्रकाशित की जाती हैं।

**सम्पादक** – स्वामी योगमाया सरस्वती
**सह-सम्पादक** – स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती

संन्यास पीठ, द्वारा–गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, हरियाणा में मुद्रित।

© Sannyasa Peeth 2016

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं। कृपया आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

**संन्यास पीठ**
पादुका दर्शन,
पी.ओ. गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201,
बिहार, भारत

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

---

*कवर*: श्री लक्ष्मीनारायण महायज्ञ, 2015

*अन्दर के रंगीन फोटो* : 1–2: चातुर्मास 2015; 3: गुरु भक्ति योग; 4–7: पाशुपतास्त्र यज्ञ एवं पंचाग्नि पूर्णाहुति 2016; 8: दश महाविद्या पीठ

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHBIL/2012/44688

# Sannyasa Peeth Events & Training 2016

| | |
|---|---|
| *Jul 5–13* | Adhyatma Samskara Sadhana (for nationals) |
| *Jul 12–Aug 11* | Vanaprastha Sadhana Satra |
| *Jul 15–18* | Guru Poornima Satsang Program (Hindi/English) |
| *Jul 19* | Guru Paduka Poojan (Hindi/English) |
| *Jul 19–Jul 9 2017* | Sannyasa Experience (for nationals) |
| *Jul 19–Sep 16* | Chaturmas Anusthana (for nationals) |
| *Aug 18–Sep 16* | Vanaprastha Sadhana Satra |
| *Sep 8–12* | Sri Lakshmi-Narayana Mahayajna (Hindi/English) |
| *Oct 1–Dec 25* | 3-month Gurukul Lifestyle (for nationals) |

***For more information on the above events, contact:***

Sannyasa Peeth, Paduka Darshan, PO Ganga Darshan, Fort, Munger, Bihar 811201, India
Tel: +91-06344-222430, 06344-228603, Fax: +91-06344-220169
Website: www.biharyoga.net

✉ A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request